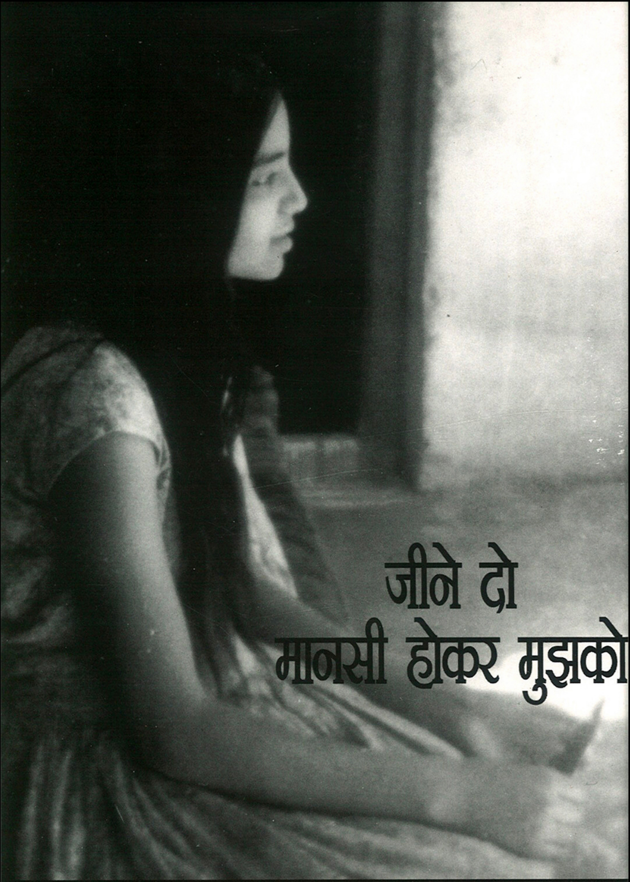

जीने दो मानसी होकर मुझको

दीपा मार्टिन्स

जीने दो मानसी होकर मुझको

दीपा मार्टिन्स

समर्पण प्रकाशन, अजमेर

प्रकाशक
समर्पण प्रकाशन
29, एल.आई.सी. कॉलोनी
अजमेर–305 006

© कॉपीराइट : अंजलि–शेफाली

मूल्य : निःशुल्क वितरण के लिए
प्रथम संस्करण : सन् 2004
छायाकार : भिनज्यू
आवरण सज्जा : अखिल
आवरण चित्र : स्व० दीपा मार्टिन्स का 12 वर्ष की आयु में लिया गया चित्र

सम्पादन सहयोग
शेफाली–दिव्या

शुद्ध संयोजन
स्क्रिप्ट कम्प्यूटर प्रोसेसिंग
नाका मदार, अजमेर (राज.)

मुद्रक
जॉब ऑफसेट प्रिन्टर्स
ब्रह्मपुरी, अजमेर

JEENE DO MANSI HOKAR MUJHKO (POEMS) by Deepa Martins

ईजा,
बाऊजी
और नरुदा
की स्मृति
को समर्पित

परिचय के दो शब्द

स्वर्गीय दीपा का यह रचना संग्रह किसी कवियश: प्रार्थी रचनाकार की तटस्थ सृजनात्मकता का परिचायक नहीं, बल्कि एक सचेत नागरिक और स्वतंत्र व्यक्तित्व की सामाजिक संलग्नता की अंकुठ अभिव्यक्ति का दस्तावेज है। शायद ऐसी ही बेचैन मन:स्थिति को प्रगट करने के लिए कविवर अंचल ने कभी निम्न पंक्तियां लिखी होंगी—

'छिपाने को छिपा लेता विकल चीत्कार मैं सारा
मगर अभिव्यक्ति की मानव सुलभ तृष्णा नहीं जाती'

जो लोग व्यावहारिक होते हैं, जिनका संसार सीमित होता है, जिनकी चिन्ताएं निजी हानि–लाभ तक ही केन्द्रित रहती हैं, वे बड़ी कुशलता से अपनी आत्मा के 'विकल चीत्कार' को छिपा ले जाते हैं। उनकी वाणी अवसरानुकूल शब्दों और स्वरों का आविष्कार कर लेती है। वे सफल और सुखी लोग होते हैं। पर जिनकी दृष्टि व्यापक होती है, जो पूरे समाज के सुख में अपना सुख खोजते हैं, वे स्पष्टवादी होते हैं। वे बिना लाग–लपेट के अपनी बात कहने में विश्वास रखते हैं और उनका यही गुण उनकी संजीवनी भी है और उनके लिए जोखिम भी।

एक सुसंस्कृत परिवार में पैदा हुई, सात भाई और तीन बहिनों में सबसे छोटी, सबकी लाड़ली कन्या दीपा की मानसिक बनावट में आधुनिक विचारों के पक्षधर, जीवन्त व्यक्तित्व के धनी, अध्यापक पिता का विशेष योगदान रहा। दीपा बचपन से ही बहुत मेधावी और स्वतंत्र प्रकृति की बालिका थी। पढ़ाई–लिखाई, खेलकूद, वाद–विवाद प्रतियोगिताओं में अग्रणी दीपा का सामाजिक दायरा क्रमश: बढ़ता ही गया। शिक्षा के प्रति समर्पित एक आदर्शवादी युवक को जीवन साथी के रुप में पाकर उसकी सोच और सक्रियता एक धर्मनिरपेक्ष, समतामूलक, संसुस्कृत और संवेदनशील समाज के निर्माण के लिए निरन्तर बढ़ती ही गई।

मैं नहीं जानता दीपा ने कभी नियमित रूप से डायरी भी लिखी या नहीं। लेकिन ये कविताएं उसके विभिन्न मूड्स को, उसकी आकांक्षाओं को, उसके स्वप्नों को, उसकी मैत्री को, उसके वात्सल्यभाव को, उसके प्रेम की विह्लता को, उसकी जिजीविषा को और उसके आत्मसंघर्ष को वाणी देती हैं।

सक्रिय जीवन में कभी अवसाद के क्षण भी आते हैं, कभी अपनी पराजय का भी बोध होता है, कभी छले जाने की भी अनुभूति होती है। लेकिन दीपा जानती है ''अपने मन की ऊर्जा से अधिक सप्राण कुछ नहीं होता'', यातना उसके व्यक्तित्व को निखारती है :

जब देखा किनारों को टूटते
मंझधार ने और पुकारा है
यातना ने हमको निखारा है।

×××

सुगमता से जिया तो जीवन ही क्या?
बिन जूझे पायी तो मंजिल ही क्या?

इन कविताओं में कवयित्री का अपना एक स्वस्थ जीवनदर्शन है जो न केवल उसे पग–पग पर संघर्षों से जूझने की शक्ति देता है बल्कि उसके परिवेश को भी ऊर्जावान और जीवन्त बना देता है। उसे जीवन से बेहद प्यार हैं, वह सम्पूर्णता में जीने की पक्षधर है :

क्या डूबे हो सूर्यास्त पर भास्कर के साथ?
क्या उगे हो उषाकाल में दिनकर के साथ?
क्या कभी तरुओं की शाखाओं को
मस्त पवन के आमंत्रण पर झूमते थिरकते देखा है?

(आत्मबोध)

वह अपने अहं को विसर्जित कर जीने के लिए प्रतिश्रुत है :

हम तुम न होंगे तब भी उगेगा सूर्य
निकलेगा चन्द्र, चमकेंगे नक्षत्र, लहलहायेंगे वृक्ष
इस अनन्त प्रवाह में
हम हैं बुलबुले मात्र

(तुम्हारा भ्रम)

कवयित्री जहां एक ओर सड़ी–गली मान्यताओं से विद्रोह की हिमायत करती है, वहीं परम्परा के उन स्वस्थ कारकों के प्रति अपना मोह नहीं छोड़ पाती जो जीवन को समृद्ध करते हैं, जीने योग्य बनाते हैं—

तुम्हारी अंगुली के सहारे के बिना
मैंने अब चलना सीख लिया है
तुम्हारी आंखों के इशारे के बिना
मैंने अब देखना सीख लिया है
मैं शक्ति, मैं ऊर्जा, मैं तेजस्विनी
मेरे ही गर्भ से जन्मते हैं तुम सम प्रखर तेजपुंज

(ओ कालपुरुष–युगपुरुष ...)

थोड़ी सी संस्कृति थोड़ी सी परम्परा
थोड़ी सी आस्था स्वीकार लो
एकाकार कर दो नूतन–पुरातन को ... ...

(ओ नई पीढ़ी के नए उबलते रक्त)

धार्मिक उन्माद के इस जहरीले वातावरण में कवयित्री की दृष्टि की व्यापकता और समरसता की उत्कट अभिलाषा जीवन को एक नया अर्थ दे जाती है :

तुम्हें तलाशने की चाह
कहां–कहां नहीं ले भटकी है
सुबह की अजान में
गोधूलि की आरती बेला में
रात्रि में बजते चर्च के
समय सूचक घंटों में

(प्रभु)

चूमा करते हैं अकीदत कर ख्वा़जा की जिस चौखट को हम
उस मुबारक आस्ताने में क्यों बरसाएं नफरत के ईंट और पत्थर?

(आओ फिर से महकाएं गुलशन को अपने)

यह आकस्मिक नहीं कि जिसने सहजता और आडम्बरहीनता को अपनी जीवनशैली के रुप में अपनाया, जिसने सदा जन–जन से जुड़ने की कामना की उसकी शवयात्रा में पूरा नगर उमड़ पड़ा हो, परम्परा की बेड़ियां तोड़कर सैकड़ों

महिलाएं श्मशानघाट पर जिसे अश्रुपूरित नेत्रों से विदा देने पहुंची हों उसकी लेखनी से ये पंक्तियाँ रची जाएं :

क्यों न रहे जीवन में इतनी सहजता,
और आती जाए व्यक्तित्व में इतनी अर्थवत्ता
कि जगत में आते हमारे पलों का हो साक्षी एक
तो महाप्रयाण के क्षणों के हो बंधु अनेक

(मृत्युबोध)

चि. अनुपम और शेफाली द्वारा अपनी ईजा की पाण्डुलिपियों का संरक्षण, संचयन और इस रूप में प्रकाशन एक श्लाघनीय प्रयास है। इन रचनाओं के माध्यम से पाठक स्व० दीपा को और भी निकट से जान पाएंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

एक प्रेरक व्यक्तित्व के प्रति अपनी आत्मीय श्रद्धांजलि के साथ,

100, लूकरगंज, इलाहाबाद

शेखर जोशी

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

1. जीने दो मानसी होकर मुझको 1
2. ममता–व्यथा 2
3. लाल जोड़े में 4
4. ऊर्जस्विता मैं 5
5. ओ कालपुरुष–युगपुरुष–इतिहास पुरुष 6
6. नारी जीवन 8
7. नारी पुरुष–प्रश्न प्रतिप्रश्न 9
8. ईश्वर के प्रति 10
9. आकाश और धरती 12
10. यातना ने हमको निखारा है 13
11. काले बादल से झांकता सूरज 14
12. थोड़े से मूल्य बदल डालो 16
13. विश्व–मैत्री संभावना 18
14. कभी जब 19
15. मृत्यु–बोध 20
16. चरैवति–चरैवति 21
17. काम्य क्षण 22
18. अहम् का विस्फोट 24
19. एकाकी जीवन 25
20. दिनचर्या 26
21. तुम्हारा भ्रम 27
22. आत्मबोध 28
23. अनगढ़ सत्य 30
24. फागुन गीत 31

पृष्ठ संख्या

25. ओ नई पीढ़ी के नए उबलते रक्त 32
26. सृष्टिक्रम 34
27. ग़ज़ल 35
28. परिणति 36
29. अनुराग गीत 37
30. फागुन महोत्सव 38
31. आओ फिर से महकाएं गुलशन को अपने 39
32. मेरे शहर की मायूसी 40
33. सामने एक कैलेंडर 41
34. वैश्विक ग्राम के नागरिक से 42
35. ए मेरे वतन के लोगों 43
36. पतझड़ से बसंत तक 44
37. संदर्भ और अर्थ 46
38. तुमने क्या अहमियत दी हमें 48
39. प्रेम 49
40. प्रतीक्षा किसी क्रान्ति की 50
41. आत्मकथ्य 51
42. आज जब तुम नहीं हो 52
43. हम तुम 53
44. तुम्हें समर्पित 54
45. तुम 56
46. जी चाहता है (अपूर्ण कविता) 57
47. दोस्त मेरे 58
48. हम बेघर हैं 60
49. आभास 62
50. कब तक यूं तरसेगा ओ मन 64
51. सेवानिवृत्ति 65
52. बेटा भी एक दिन हो जाता है पराया 66
53. द्रोणाचार्य से 67

पृष्ठ संख्या

54. मैं क्या कहकर दिलासा दूं उसे? 68
55. हलाहल-अमृत 69
56. तुम्हारे न होने का समाचार मिला है मित्र 70
57. अभिव्यक्ति गूंगी हुई 72
58. सृष्टि का क्रम 73
59. सूरज से 74
60. सूनी दुपहरी 75
61. सिद्धांत और सत्य 76
62. सब कुछ दांव पर लगाकर 77
63. रेत, नदी और प्यार 78
64. खाली गगरी 79
65. मांदें 80
66. प्रभु 82
67. नववर्ष 84
68. ऐ दोस्त! 85
69. कब तक? 86
70. जीवन 88
71. विचार 90
72. मित्र तुम्हारे लिए 91
73. हिमाचल 92
74. बुद्ध 93
75. आओ करें यात्रा 94
76. साधें अपना युग-धर्म 95
77. विश्वास 96
78. जीवन की स्वर्ण-जयन्ती पर 97
79. जब से हुआ है हमारा साथ 98
80. सोनू की 22वीं वर्षगांठ पर 100
81. दीपावली 101
82. विदा की इस बेला में 102

			पृष्ठ संख्या
83.	तुम्हें मुबारक हो जीवन का आगामी वर्ष	....	103
84.	सोनू के सिंगापुर जाने के उपलक्ष्य में	....	104
85.	फिर से जलने को हैं दीप दीवाली के	....	105
86.	डाउन मेमोरी लेन—प्रिय सोनू को– उसके विवाह के अवसर पर–ईजा के उद्गार	....	106
87.	प्रिय अनुपम और अंजलि को उनके शुभ–विवाह के अवसर पर	....	108
88.	सोनू की पच्चीसवीं वर्षगांठ पर	....	109
89.	मेरे पास न विपुल धन है	....	110
90.	दीपावली पर शेफू के लिए	....	111
91.	प्रिय शेफू को उसके सत्रहवें जन्मदिन पर	....	112
92.	शुभकामनाएँ	....	113
93.	बेटी	....	114
94.	शेफू के लिए	....	115
95.	बिटिया	....	116
96.	गीता को मेरा काव्यमय अभिवादन	....	117
97.	नरूदा के लिए	....	118
98.	निम्मा की पचासवीं वर्षगांठ पर	....	119
99.	प्रिय निम्मा और राजीव के लिए	....	120
100.	अन्नू की सगाई पर	....	121
101.	उषा–अशोक के विवाह की वर्षगांठ पर	....	122
102.	निर्मल को उसके जन्मदिन पर	....	123
103.	दिव्या की 21वीं वर्षगांठ पर	....	124
104.	शुभाशीष	....	125
105.	दिव्या के जन्मदिन पर	....	126
106.	नीलम जी के लिए	....	127
107.	प्रिय रेणु के लिए	....	128
108.	सेंट स्टीवन्ज़ के विद्यार्थियों के लिए— बाल दिवस के अवसर पर	....	129

जीने दो मानसी होकर मुझको

अपनी शर्तों, अपने तरीकों, अपनी मान्यताओं से ही
जीने देते हो तुम मुझको
हँसती बोलती चाबी वाली गुड़िया की तरह
अपना अनुगमन करने की अपेक्षा करते हो तुम मुझसे
जब चाहते हो कर देते हो मुझे महिमामंडित
नारी देवी, नारी शक्ति, नारी चिर ऊर्जस्वित
दुर्गा, रमा, उमा, सीता, लक्ष्मी, सरस्वती
नाम स्मरण से जिनके जगती है मन में भक्ति
फिर फेंक देते हो स्वर्ग से पाताल में मुझको
ढोल, गंवार, शूद्र और पशुओं की पंक्ति में बिठाकर
मंदिरों में करते हो शक्तिरूपा देवी की प्रतिष्ठा
मुझे नित उपेक्षित कर, देते नहीं प्राणों की भी भिक्षा
मेरी निश्शब्द निस्वार्थ सेवा को मानते हो अपना अधिकार
फिर भी मुझ पर करते हो आरोपों की बौछार
मेरे अस्तित्व को राख के ढेर में बदलने में नहीं कांपते तुम्हारे हाथ
क्योंकि व्यवस्था का हर घटक देता है अन्तत: तुम्हारा ही साथ
एक शिकार कर खूनी नरभक्षक हो जाते हो तुम
नित नये मादा शिकार की तलाश में जाते हो तुम
किन्तु अब और नहीं सहूँगी मैं अपने अस्तित्व का क्षरण
मैंने भी अब कर लिया है सबलता का वरण
मत करो देवी कह कर अब और मेरा वंदन
जीने दो मानसी होकर मुझको, मत डालो और बंधन!

ममता-व्यथा

आत्मज मेरे !
तुझ जैसे नन्हें शिशुओं की किलकारियों पर रीझे हैं कवि अनेक
भर दिया है वात्सल्य रस के सिन्धु से काव्य को अपने
और बार-बार डूबे उतराए हैं उसमें
पर क्या लिखूं मैं तेरे लिए, मेरे भोले शैशव की प्रतिच्छाया!

तू मुझमें जगा देता है न जाने प्रतिक्रियाएं कितनी
तेरा ठुनकना, मचलना भर देता है मन के खाली कोनों को
और फिर रीता भी कर देता है ...
मैं निर्द्वन्द्व हो तुझसे प्यार भी नहीं कर सकती
घर आते ही खो जाना पड़ता है अपनी घरेलू दुनिया में मुझे।

रसोईघर से सुनते हैं मेरे आतुर कान
क्रन्दन तेरा - पुकार तेरी
मन होता है आंचल की सारी ममता उड़ेल डालूं तुझ पर
भर दूं चुम्बनों से तेरा भोला चेहरा
न जाने क्यों रुक जाते हैं हाथ मेरे क्षण भर को
और फिर तीव्रतर गति से निपटाने लगते हैं शेष काम
कि शीघ्र तुमसे निर्बाध हो मिलूं।

सहसा सुनाई नहीं पड़ती तेरी आवाज़
और जब तुम तक पहुंचती हूँ तो पाती हूँ
तू भीगी पलकों की कोर में चंद मोती लिये
सो जाता है माँ की प्रतीक्षा में।

मैं, तेरी विवश माँ
खाली बैठी रात की निस्तब्धता में
तेरा नन्हा मुख चूमा करती हूँ
तेरे छोटे-छोटे हाथों को परसती हूँ
तुझे अंग से लगा लेती हूँ
तू इस ममता-व्यथा से बेखबर हो सोया रहता है
जागता ही नहीं
और जब भोर की पहली किरण के साथ तू जागता है
तेरी जननी फिर तुझे पराये हाथों छोड़
लिप्त हो जाती है अपनी दिनचर्या में।

लाल जोड़े में

लाल जोड़े में तू है सजी
आत्मविमुग्ध–आत्मलीन।
अपनी ही मोहक छवि को,
दर्पण में निहारने में तल्लीन।
आभूषणों की मृदुल झंकार,
नववधू का सुरम्य श्रृंगार,
सप्तपदी की प्रदक्षिणा,
परिणय के मंत्र,
उत्सव का उल्लास,
जगाते हैं तेरे मन में नवजीवन की नव आस।
तेरी आंखों में सज उठते हैं भविष्य के सुनहले स्वप्न,
और मन में नवपरिवेशमय होने की लगती है अनूठी लगन।
मेरे मन का पोर–पोर बरसाना चाहता है तुझ पर आशीषों की झड़ी
तेरे सुखमय जीवन की कामना लिये रोक लेती हूँ मैं अश्रुओं की लड़ी।
मन देता है तुझे खुशियों की चादर ओढ़ा,
पर डरती हूँ कहीं तेरा यह सुर्ख लाल जोड़ा,
भविष्य में धधक कर अंगार न बन जाए,
तेरा सुकोमल बदन एक दिन दहक कर कोयला न बन जाए।
मेरे कानों में जीवन भर न गूंजें तेरे क्रन्दन के आहत स्वर
न देखूं मैं दुःस्वप्न कि मेरे सोनचिरैया के पंख दिए गए हों कतर
लाड़ली तेरी पलकों पर सजे हर स्वप्न का है वास्ता तुझे
कंटीली डगर से फूलों तक का स्वयं चुनना है रास्ता तुझे।
आ, मैं अपनी ममता से भर दूं तुझमें इतनी शक्ति
कि तेरे जीवन में हो अपार ऊर्जा, साहस और अनुरक्ति
मनमीत के प्रेम में तू हो स्नात
जगमगाए, झिलमिलाए तेरे विवाह की यह रात।

ऊर्जस्विता मैं

सतयुग में शब्द–पुष्पों से मेरा बहुत गुणगान हुआ
जहां है नारी वहीं करते देवता रमण ऐसा यशोगान हुआ
किन्तु पुरुष के क्रूर हाथों तब भी मेरा अपमान हुआ
गौतम–प्रिया अहिल्या की परिणति प्रतीक्षारत पाषाण हुआ।

त्रेता–युग में धनुष–भंग कर युग पुरुष राम ने वरा मुझको
पर लंका के यातना शिविर के बाद भी देनी पड़ी अग्नि–परीक्षा मुझको
और फिर आसन्न प्रसवा को त्याग, दिया निर्मम वनवास मुझको
परित्यक्ता, दिशाहारा, धरासुता मैं—माँ धरती ने ही दिया आश्रय मुझको।

द्वापर के सर्व–समर्थ यशस्वी पांडवों की भार्या बनी मैं
अकिंचन भिक्षा की तरह पांच महारथियों में बांटी गयी मैं।
पति परमेश्वर के मनोविनोद के जुए में हारी गयी मैं
राजसभा में निर्वस्त्र करने को विजेताओं द्वारा उतारी गयी मैं।

कलयुग में और भी बढ़ते गये मुझ पर अत्याचार
दहेज, हिंसा, उत्पीड़न, अन्याय, हत्या और बलात्कार
हर ओर सुनाई दे रहा है शोषित नारी का चीत्कार
उपेक्षिता आधी आबादी का बढ़ता जा रहा है हाहाकार।

कभी राम कभी श्याम ने किया था मेरा उद्धार
पर अब मैं स्वयं ही बनूंगी अपनी नैया की खेवनहार
शक्ति को अपनी संचित कर जाऊँगी क्षितिज के पार
नयी सहस्राब्दी की ऊर्जस्विता मैं, अब नहीं मानूंगी हार॥

ओ कालपुरुष–युगपुरुष–इतिहास पुरुष

तुम्हारी अँगुली के सहारे के बिना
मैंने अब चलना सीख लिया है,
तुम्हारी आंखों के इशारे के बिना
मैंने अब देखना सीख लिया है,
मेरी दृष्टि अब तुम्हारे बताए सीमान्त तक ही नहीं उठती
इसने क्षितिज के अंतिम छोर के भी पार जाना सीख लिया है।

अब तक मैं करती आयी भरसक प्रयास
मात्र अनुगमन करने का तुम्हारी प्रतिच्छाया बन
अपने स्व, अपने निज को न पा आसपास
किया सदा सर्वदा तुम्हीं को नमन।
पर अब देख दर्पण में अपनी छाया को
तुम्हारी नहीं अपनी प्रतिमूर्ति जानना मैंने सीख लिया है।

युगों से मैं अहिल्या सम पाषाण बन
करती रही प्रतीक्षा उद्धारक इतिहास पुरुष राम की
किन्तु इस भ्रम को तोड़ अब स्वयं को ही
अपना मुक्तिदाता मानना मैंने सीख लिया है।

सदियों से मेरे वर्चस्व, मेरी अस्मिता को
सदा पैरों तले रौंदा तुमने
तुम्हारे पुष्ट कंधों का ही संबल है मुझे
गर्व से मदमाते यही सदा कहा तुमने
पर कंधों पर रखे अपने उन्नत मस्तक के सहारे
अपनी बनायी राहों पर चलना मैंने सीख लिया है।

मैं शक्ति, मैं ऊर्जा, मैं तेजस्विनी
मेरे ही गर्भ से जन्मते हैं तुम सम प्रखर तेज-पुंज
अपने व्यक्तित्व के महकते विविध आयाम
नहीं लगते मुझे धड़विहीन, अप्रासंगिक, लुंजपुंज
सहचरी बन नव-अस्तित्व बोध को अपने
परखना, पहचानना, सहेजना मैंने सीख लिया है
कालपुरुष, युगपुरुष, ओ इतिहास पुरुष!
तुम्हारी चेरी बनना मैंने अब छोड़ दिया है
मैंने अब छोड़ दिया है।

नारी जीवन

अपेक्षा और उपेक्षा के दो ध्रुवों पर
हिचकोले खाती नौका सम डोलता है नारी जीवन
एक सिरे को पकड़ते-पकड़ते
दूसरा हाथ से छूट छूट जाता है

नए रास्ते तलाशते-तलाशते
पुरानी पगडंडियां ओझल हो जाती हैं
अपरिचित डगर की रपटीली फिसलन
और जकड़ देती है पैरों की गति को

सूरज की रोशनी का एक कतरा तलाशते-तलाशते
उम्र बीतने पर भी हाथ लगता है दमघोंटू अंधेरा
खोजने पर भी नहीं मिलती ममता भरी छांव, आत्मीय स्पर्श
बचपन की सुचिक्कन दहलीज से वार्द्धक्य की सूखी मंज़िल तक
नहीं है संवेदना की कोई संभावना

जननी वह पुरूष की फिर भी सहे इतनी यातना
घेर दिया गया है उसे प्रश्नचिन्हों की कंटीली बाढ़ से
और समाधान गढ़े ही नहीं जाते उसके लिए
बिंधकर, लहुलुहान होकर, आहत होकर भी।

नारी पुरुष–प्रश्न प्रतिप्रश्न

तुम्हारे पास शक्ति है
मेरे पास भक्ति
तुममें है अधिकार गर्व
मुझमें है ममता
तुमने सृष्टि को अपने चरणों तले रौंदा है
मैंने मंदाकिनी बन उसे सींचा है
तुमने सदा विध्वंस किया है
और मैंने हर विध्वंस के बाद
नए सिरे से टूटे को जोड़ने का प्रयास किया है।

निर्णय तुम्हीं को करना है
(क्योंकि हर सही गलत निर्णय आज तक तुम्हीं करते चले आए हो)
कि तुम्हारा सामर्थ्य, तुम्हारा स्फीत अहं ही
जीवन की अंतिम परिणति है
या मेरी मूक यातना?

अधिकार तुमने अपनी झोली में भर लिये
और मुझे पकड़ा दी कर्त्तव्यों की लंबी सूची
पर किया व्यंग्य नियति ने यह
कि तुम्हारी भरी झोली रीतती चली गई
और मुझे प्रतिदिन टूटते रहने की प्रक्रिया में
मिल गया जीवन सत्य
तुम विजित होकर भी पराजित हुए
और मैं जय पराजय की सीमा से बहुत दूर निकल आई हूँ
बहूत दूर निकल आई हूँ।

ईश्वर के प्रति

सृजन करते हो तुम
कहलाते हो सृष्टा
पुरुष हो
पर दिया है गुण अपना यह नारी को तुमने
सृजन का दर्द कैसा होता है ना?

छटपटा कर, अकुला कर भी
तृप्ति ही तृप्ति होती है
तभी हर दंश सहे जाती है माँ
दर्द की हर उठती हिलोर
भर देती है उमंग उसमें
कुम्हार ही तो हो जाती है वह
गढ़ती है अपनी प्रतिकृति
पर तुम तक नहीं पहुंच पाती है वह
हर बार अपनी कृति रचकर
कितने तटस्थ हो जातें हो तुम!

पर वह,
रचकर रचना को क्यों मानती है अस्तित्व अपना?
जबकि नव अस्तित्व, नवपरिवेश युक्त हो वह
कहां रह जाता है उसका?

वह भी व्यक्तित्व की ऊंचाई तलाशते-तलाशते
उठता जाता है और ऊंचा दिन-दिन

जड़ को बिसरा कर अपनी
जबकि अमरलता सी यह
चाहती है छा जाना अपनी रचना पर
यह जाने बिना—यह चीन्हे बिना
कि अस्तित्व मिट जाता है वृक्ष का अमरलता से
फिर घिर उठती है वह निराशा के उस
गहन घोर अंधकार से
डूब जाती है व्यथा के उस तिमिरवन में
जहां युगों तक नहीं पहुंच पाता रश्मिरथी कोई।

आकाश और धरती

ओ अनन्त विशाल आकाश!
तुम्हारी निस्सीमता का मादक गर्व पल-पल झेलती है धरती
अपनी व्यापकता में मदमाते जब तुम उसपर छा जाते हो
अपने अहम् को विस्मृत कर आकाशमय हो जाती है धरती
कौन महिमामंडित करता तुम्हें? सोचो-यदि तुम्हारी प्रतिच्छाया न बनती धरती!
दोनों की एकात्मकता का महामिलन कहलाता है क्षितिज
यूं दो छोर है ब्रह्मांड के गगन और धरती
आतुर प्रणयी आकाश आलिंगनबद्ध होने को उतर आता है नीचे
नववधू-सी अवगुंठनमयी हो लजाती है यह धरती
अनुराग की अरुणिमा का सिन्दूर बिखर जाता है सीमान्तों पर
आकाश से जब पुलकित हो एकाकार होती है धरती
यही है संबंधों की प्रगाढ़ता का सच, यही अर्थ रिश्तों की मधुरता का
जब अभिन्न एकरूप हो जाते हैं आकाश और धरती
फिर क्यों सदा गर्वोन्मत रहे आकाश अपनी महत्ता में
फिर क्यों अपनी लघुता के बोध से घिरती रहे धरती?
जब-जब आकाश का हृदय हो विदीर्ण
अपनी ममता का मरहम उसके उर में लगा दे धरती
आकाश बरसा दे अपने मेघों का शीतल जल
जब-जब दु:ख के लावों से फट पड़े धरती
कभी आकाश को भी हो कामना भू-चारी होने की
सदा आकाश की ही अभिलाषा न करे धरती
जीवन में बहेगी समरसता की धारा तब ही
मिलेंगे जब उमंगित हो दोनों-आकाश और धरती।

यातना ने हमको निखारा है

यातना ने हमको निखारा है,
हर दर्द ने और संवारा है,
जब देखा किनारों को टूटते,
मंझधार ने और पुकारा है।
यातना ने हमको निखारा है॥

सुगमता से जिया जो जीवन ही क्या?
बिन जूझे पायी तो मंजिल ही क्या?
हमें तो संघर्षों ने दिया है बल,
तूफानों ने दिया सहारा है।
यातना ने हमको निखारा है॥

हर बार मिला ज्ञान नया।
हर बार हुआ भान नया।
सच्चा कौन? कच्चा कौन?
यथार्थ को हमने निहारा है।
यातना ने हमको निखारा है॥

देखा चट्टानों को बिखरते हुए।
देखा झूठ का सैलाब उमड़ते हुए।
देखा बनती को बिगड़ते हुए।
फिर भी ये मन न हारा है।
यातना ने हमको निखारा है॥

काले बादल से झांकता सूरज

कभी-कभी होता है ऐसा जीवन में सरे शाम,
कि सहसा चलते-चलते लग जाता है विराम।
दूर क्षितिज तक छा जाता है घोर अंधकार
और नहीं रहता दु:ख का कोई पारावार।

पीड़ा ही पीड़ा का रहता है अहसास,
सुख की उजली किरण नहीं होती आसपास।
शून्य ही शून्य मंडराता है उर में,
कोई साज ज़िन्दगी का बजता नहीं सुर में।

परिजन स्वजन यूं देते हैं दिलासा
फिर भी जगती नहीं मन में कोई आशा
क्षितिज की ऊंचाइयों से पाताल पर
मानो फेंक दिया हो किसी ने उछाल कर।

यश उत्सव, आनन्द ललाम,
सब हो जाते हैं स्वप्न समान।
किन्तु यही नहीं है जीवन की परिणति,
शिथिलता में नहीं है जीवन की गति।

सामयिक हो सकते है परिवर्तन
क़िन्तु फिर होता है परावर्तन,
निराशा का छंट जाता है अन्तत: कुहासा,
और फिर लहराती है नव उमंग-नव आशा।

छंटते हैं जब हताशा के काले बादल,
मन सरोवर में खिलते हैं शुभ्र शतदल।
फिर से कर्मठता में होती है रति,
जीवन के सुंदर स्वरूप में जगती है अनुरक्ति।

वाणी को मिलने लगते हैं वरदान नये
व्यक्तित्व के फिर महकते हैं आयाम नये
हमें यही शाश्वत सत्य सदा बंधाता है धीरज,
कि हर काले बादल के पीछे से अवश्य झांकता है सूरज।

थोड़े से मूल्य बदल डालो

है बहुत अच्छा व्यथित मन के भावों को
उमड़ा घुमड़ा कर अश्रु-मेघों को बरसा देना

है बहुत अच्छा पुलक से भर हर्षित हो
सुख के क्षणों में मन-सुमन को सरसा देना

है बहुत अच्छा रोपित हो
भावों की चपल तड़ित को मनाकाश में गरजा देना

है बहुत अच्छा मीत पर
प्रणय-क्षणों में मुग्ध हो भाव-हृदय के दर्शा देना

है बहुत अच्छा शत्रु से
कर सामना उस पर कहर बर्पा देना

किन्तु मित्र! इतिहास-रथ अब अपना आगे हांका जा चुका है
कि इतनी पारदर्शिता का अर्थ है
अस्तित्व-दर्पण को अपने हाथों तड़का देना
माना तुम्हें है नहीं अभ्यास कृत्रिमता का
पर आज का युग धर्म है
थोड़ी सी बनावट ओढ़ लेना
मन जब स्वयं से करे बारंबार विद्रोह
और पगले हाथी सा तोड़ना चाहे
वर्जनाओं की सभी अर्गलाएं

उस समय अच्छा होता है मित्र
अंकुश चतुर महावत सा स्वयं पर लगा लेना
ये कलयुग है मित्र
घोर यंत्र-युग
जहां युग-धर्म पारदर्शिता नहीं कृत्रिमता है
जहां वातायन के बाहर-भीतर- हर ओर यांत्रिकता है।
सारे जहां की चिन्ता छोड़ो मित्र
संसार चलता आया है चलता जाएगा
अपने को संपूर्णतः बदल डालो
ये मेरा आशय नहीं है मित्र
पर इस जड़ स्वरति पीड़ित संस्कृति काल में
सारे सुरक्षा-कवच यूं न उतार फेंको
अपने लिए न सही- हमारे लिये ही
थोड़े सावचेत हो लो
थोड़े से मूल्य बदल डालो।

विश्व-मैत्री संभावना

चलते हैं जब शब्दों के व्यंग्य बाण
हो जाता है मन लहुलुहान

लगाती है जब कटु जिह्वा घात
खिले मन पर हो जाता तुषारापात

जलते हैं जब ईर्ष्या के अलाव
हो जाते ताजे कई पुराने घाव

जब होता है परस्पर अविश्वास
नहीं रहता शेष स्नेहाभास

टूट कर बिखर जाते हैं संबंध
उड़ जाती है सुवासित मृदु गंध

अंतर्मन हो जाता है तार-तार
ज्यों टूट जाए अचानक बजता सितार।

फिर क्यों इतना कटु पाले हम
क्यों न सहज मन के द्वार खोल डाले हम

दें परस्पर स्नेह, आस्था और विश्वास
और लाएं जीवन में पुन: हर्ष और उल्लास

जब होगी परस्पर मृदुभावना
तब ही बढ़ेगी विश्व मैत्री की संभावना।

कभी जब ... ...

कभी जब जीवन की लंबी डगर में
शिथिलता हावी होने लगे
सारे मार्ग, सब दिशाएं
अंधेरी सी दिखने लगे
और प्रश्नचिन्ह हर घुमावदार पगडंडी पर अड़कर
तुम्हारे क्षितिज को धूमिल करने की कुमंत्रणा करने लगे

तब – हां, तब
अपने ही भीतर खोजना हर प्रश्न का उत्तर
हर शंका का समाधान
और तुम पाओगे कि
अंधेरे का गाढ़ापन उजाले को और भी उजलाता है

प्रश्नों की उधेड़बुन से ही
अंकुरित होते हैं जीवन-सत्य
और अपने मन की ऊर्जा से अधिक
सप्राण कुछ नहीं होता।
कुछ नहीं होता॥

मृत्यु - बोध

मृत्यु तुम हो चिरंतन और शाश्वत
जीवन के कोलाहल का हो अंतिम तथ्य
तुम्हारी दबी दबी सी पगचाप
कहां पाते हम प्राणी मर्त्यलोक के भांप?
तभी रहते हैं सदा आत्मलीन, मगन
जब तक रहता है जीवन का स्पंदन
पगते हैं स्वयं को सांसारिकता की चाशनी में
देखते हैं अंधेरे हवाईकिलों की स्वनिर्मित रोशनी में
किन्तु तुम्हारी पुकार की टंकार
भेद देती है अट्टालिकाओं के सिंहद्वार।
वातानुकूलित कक्षों के वासी
अभाव दरिद्रता के चिर उपहासी
कांटा भी न चुभा कभी जिनके पांव में
आ जाते हैं धरती माँ की शीतल छांव में
छूट जाती है यही धन-धान्य, संपदा की पिटारी
जब होने लगती है सुदूर यात्रा की तैयारी
जब है ज्ञात हमें यही है जीवन की परिणति
क्यों बांधते हैं मोह के बंधन क्यों करते हैं स्वरति।
सिंकदर सम विश्वविजेता भी जीत न पाया तुमसे
बनना ही पड़ा तुम्हारी राहों का राही उसे
तो हम मानव क्यों फैलाएं और भ्रम-जाल
इस लघु कालावधि में क्यों पालें इतने जंजाल
क्यों न रहे जीवन में इतनी सहजता
और आती जाए व्यक्तित्व में इतनी अर्थवत्ता
कि जगत में आते हमारे पलों का हो यदि साक्षी एक
तो महाप्रयाण के क्षणों के हों बंधु अनेक!
हों बंधु अनेक॥

चरैवेति चरैवेति

आज
जीवन के निर्णायक मोड़ पर
मानो एक चौराहे पर खड़ी हूँ मैं
कुछ मार्ग, पगडंडिया वीथियां
जो कभी बहुत सार्थक लगती थी
अब विस्मृत सी हो गयी हैं।

और कुछ अनचीन्हीं राहों पर
डग बढ़ाने का मैंने किया है संकल्प
कुछ चिर-परिचित मोहक संस्पर्श
अब रेत से फिसलते जा रहे हैं
और कई नए क्षितिज
अब झांकने लगे हैं मेरे वातायन में।

मित्रों ने मुझे दिए हैं
विदा के कई मधुर आत्मीय संदेश
पुष्प, गंध, हास, पीड़ा अश्रु का समागम
और हिलती हथेलियों का स्पर्श
सब कुछ पीछे-पीछे छूटता जा रहा है,
आगे है सपने नई दुनिया के
पीछे है स्मृतियां मधुर अतीत की
आलोड़न-विलोड़न मंथन की इस बेला में
चलते जाना, मात्र चलते जाना ही मेरी नियति है।

मैंने सहेज लिया है अतीत के चन्द्रमा के अमृत को
और गड़ा दी है अपनी दृष्टि भविष्य के क्षितिज पर
जहां सूर्य का प्रखर ताप और ऊर्जस्विता
मेरी प्रतीक्षा में आंखें बिछाए बैठे हैं॥

काम्य क्षण

तुम्हारी पलकों से आसूं नहीं, मोती झरते हैं
मोती जो बहुमूल्य हैं दुर्लभ हैं
इन मोतियों को भीतर ही भीतर सहेज लो समेट लो
इन्हें यूं बिखरा कर निराहत न करो

तुम्हारी मीठी आवाज़ में
मुझे नहीं सुनने हैं पीड़ा के गीत
मैं तो इसमें केवल सुनना चाहती हूँ
निर्झर सी खिलखिलाती मदमाती हंसी

तुम्हारी दुनिया में विधाता ने
दर्द की जागीर नहीं, मुस्कान के फूल बिखेरे हैं
अत: तोड़ डालो पीड़ा के सभी बंधनों को
बाहर निकलो अपने भीतर के अंधेरों से

ये जीवन विधाता का उपहार है
जो न जाने कितनी योनियों में भटकने के बाद मिलता है
देखें प्रकृति के सुन्दर क्रम को
रात की कालिमा के बाद सुनहरा प्रभात

पतझड़ के बाद बसन्त
उमस के बाद वर्षा
और अमावस के बाद
पूनम का धुला-धुला चांद निकलता है।

माना आज उदासी के गहरे काले सायों ने
तुम्हारी उम्मीदों के सूरज को ढांप रखा है
पर ऐसा एक दिन अवश्य होगा जब
इन काले सायों को रौंदकर

चमकेगा निखरा ऊष्मित ऊर्जस्वित सूर्य
जो जीवन के हर आयाम को
उजास से, आशा से, उत्साह से,
जगमग जगमग कर देगा

तुम अपने जीवन प्रवाह में
आनंदित उमंगित हर्षित हो
उस काम्य क्षण की – प्रतीक्षा करो मित्र, प्रतीक्षा करो॥

अहम् का विस्फोट

अहम् के विस्फोट से
पहले चरमराते फिर टूट जाते हैं संबंध
पनपने लगता है जब अविश्वास का अंकुर
कहाँ रह पाता है तब स्नेह का अनुबंध?

आरोपों प्रत्यारोपों के निर्मम कोड़ों से
छिलने लगती है जब आस्था की पीठ
बिखर जाता है मूल्यों का शिराजा
कैसे स्थायी रह सकता है कोई गठबंध!

कड़वाहट का लावा बिखेरता है जब
क्रोध और अविवेक का ज्वालामुखी
उजड़ जाता है सपनों का संसार
शेष रह जाती है परिवेश में मात्र दुर्गन्ध!

रिसते हुए रिश्तों की जर्जर चादर में
कहाँ तक लगाएं गांठ हम
दूर-क्षितिज के छोर तक
संभावना की हर दिशा लगती है आज बन्द।

एकाकी जीवन

अकेला सूर्य फैलाता है, जग में जीवन की आस
अकेला चन्द्र गगन को, देता है शीतल प्रकाश

अकेला अंकुर झेल ग्रीष्म, वर्षा, शीत बन जाता है पेड़
अकेला सागर गरज गरज, कर देता है कूलों को तोड़

अकेला बादल तृप्त कर, देता है धरती को हरियाली
उसके संस्पर्श से झुलसती, भू पर छाती है खुशहाली

अकेला पंछी गा-गाकर, छेड़ता है मधुर तान
उसके कलरव से पुलकित, प्रकृति भी गाती है मृदु गान

अकेले कवि की प्रेरणा पा, पंख लगा उड़ते हैं मेघदूत
और करते हैं उसकी एकाकिनी, विरहिणी को आहूत

अकेले हो फिर भी चले चलो, है यह संदेश रवीन्द्र का
क्यों एकाकीपन से व्यथित हो, हम करें निरादर कवीन्द्र का।

आओ अपने एकाकी जीवन को, दें आज नये आयाम
संचित कर अपनी एकान्वित शक्ति, छू लें कल आसमान॥

दिनचर्या

कुछ हलचल है मन में
कुछ खनक मौसम में
छाया अवसाद का कुहासा सा
अनिश्चितता सी व्यापी है जीवन में

यूं ही आना सुबह का
यूं ही ढल जाना शाम का
बीतना निरर्थक सा दिनचर्या का
लगता नहीं किसी काम का।

कभी-कभी होता है ऐसा ही
कि अचानक भारी व्यस्तता के बाद
सहसा सब कुछ रीत सा जाता है
रौनक, चहलपहल, आवागमन के बाद
भराभरापन बीत सा जाता है

रह जाता है उत्सव के पश्चात का सूनापन
छा जाता है विचित्र सा खालीपन
किन्तु अधिक नहीं चलता है ऐसे भी
हम समझा लेते हैं मन को कैसे भी।

स्थायी नहीं रहती है जीवन में रिक्तता
भाती है अत्यधिक मिठास के पश्चात थोड़ी सी तिक्तता
रिक्त स्थानों की शनैः-शनैः होने लगती है पूर्ति
आ जाती है जीवन में पुनः नयी ताकत, नव-स्फूर्ति॥

तुम्हारा भ्रम

तुम सोचते हो
यह सूर्य मात्र तुम्हारे इंगित पर ऊर्जा देता है
चन्द्र बिखेरता है अमृत तुम्हारे कहने पर
नक्षत्र अपनी कक्षा में घूमते हैं तुमसे अनुमति लेकर
वृक्ष देते हैं छाया क्योंकि तुम हो।

आभास कुछ ऐसा होता है तुम्हें
कि कल तुम्हारे जाने पर
दिशाएं सूनी हो जाएंगी
सूर्य-चन्द्र जड़वत् हो उठेंगे
नक्षत्र धूमकेतू बन टूट पड़ेंगे
और प्रकृति गतयौवना हो उठेगी।

यह तुम्हारा भ्रम है बन्धु
समय की गति अबाध है
उसका प्रहरी बनने का दंभ मत पालो।

हम तुम न होंगे तब भी उगेगा सूर्य
निकलेगा चन्द्र, चमकेंगे नक्षत्र
लहलहाएंगे वृक्ष
आएगा हर वर्ष बसन्त
और विदा लेगा पतझड़।

इस अनंत प्रवाह में हम हैं बुलबुले मात्र
आओ सहज उन्मुक्त हो
बहते जाएं
बहते जाएं॥

आत्मबोध

क्या तुमने किनारे पर मौन, निश्शब्द बैठकर
सागर की फेनिल लहरों का नर्तन देखा है?

क्या तुमने अलसायी अरुण-बेला में
प्राची के सिंदूरी रंग में रंजित बाल-अरुण को देखा है?

क्या तुमने यंत्रों के संसार को त्याग कर
पक्षियों का मधुर कलरव सुना है?

क्या कभी अवांछित कर्कश ध्वनियों से परे
अन्तर्मन के झंकृत संगीत को गुना है?

क्या कभी मेघखंडों को शुभ्र आकाश-वन में
उमड़ते, घुमड़ते या विचरते पाया है?

क्या कभी पर्वतों के उन्नत शिखरों को
आत्मलीन, तटस्थ हो प्रशान्त भाव से सिहरते पाया है?

क्या कभी तरुओं की शाखाओं को
मस्त पवन के आमंत्रण पर झूमते थिरकते देखा है?

क्या किसी राकाविहीन रजनी में तारागण को
धरती का प्रहरी बन कुछ प्रकाशकण बिखेरते देखा है?

क्या डूबे हो सूर्यास्त पर भास्कर के साथ?
क्या उगे हो उषाकाल में दिनकर के साथ?

क्या कभी सांसारिक बोध से परे हो
अपने अन्तर्मन का संदेश पढ़ा है?

क्या जीवन-फलक के चित्र को
अपनी भावना के अनुरूप गढ़ा है?

पगते ही रहे यदि सांसारिकता की चाशनी में
तो क्या मिल पायेगा ऋत?

यूं ही चलता रहा यदि जीवन क्रम तो
हम जीते-जी हो जाएंगे मृत।

अनगढ़ सत्य

आज तुम जिस शीर्ष स्थान पर हो
वहां से हर आकार कितना बौना प्रतीत होगा तुम्हें!

तुम्हारी आंखों में भविष्य के सुनहरे स्वप्न सजे हैं
भटकता अतीत अब कहां याद आता होगा तुम्हें!

नए संदर्भों के साथ नए अर्थ जुड़ते होंगे रोज
बासी अखबार के से गुजरे संदर्भ कहां सार्थक लगते होंगे तुम्हें!

महत्व का जो दायरा है आज इर्दगिर्द तुम्हारे
वही अंतिम सत्य लगता होगा तुम्हें!

ऊंचे जिस गंतव्य तक आज पहुंचे हो तुम
अंधे घुमावदार मोड़ अब नजर नहीं आते होंगे तुम्हें!

इस रुपहले इंद्रधनुष के बाद
मटमैले बादल कहां रुचते होंगे तुम्हें!

जिन हाथों ने तुम्हें गढ़ा था कभी
उनकी छुअन क्या याद होगी तुम्हें!

एक दिन जब प्याज के छिलके सी
खुलती जाएंगी अस्तित्व की परतें!

और सामना होगा मात्र स्वयं से
क्या अनगढ़ सत्य सहन होगा तुम्हें?

फागुन गीत

बसन्त की पगचाप
सुन ढोलक की थाप
सरसों का मन सरसाया है
टेसू हुआ लाल
उड़े रंग गुलाल
कि फागुन आया है।

इन्द्रधनुषी रंग, मौसम ने पी भंग
मस्ती की बजी चंग, मन हर्षाया है
कि फागुन आया है।

न अब शिशिर की सिहरन, न हाड़ कंपाती ठिठुरन
हुआ मधुमय आलम, नशा सा छाया है
कि फागुन आया है।

छेड़ें मीठी तान, गायें फागुनी गान
भूलें अपना भान, रंग बादल छाया है
कि फागुन आया है।

झरे घृणा की कड़वी निबोरी
फैले प्रेम की मीठी अंबौरी
ऋतुराज का सखी री
संदेसा आया है
कि फागुन आया है॥

ओ नई पीढ़ी के नए उबलते रक्त

ओ नई पीढ़ी के नए उबलते रक्त
तुम हर स्वीकार को नकार देते हो
हर परंपरा को झटके से तोड़ देते हो
हर स्थापित मान्यता को अस्वीकार कर
नई परिभाषाएं तलाशने लगते हो।

अच्छा लगता है तुम्हारा अस्वीकार
मोहक लगती है तुम्हारी भंगिमा
मन को छूती है तुम्हारी प्रतिक्रिया।

पर सच कहना
क्या सचमुच तुम्हारी भुजाओं में इतनी शक्ति है
कि तुम पूरी दुनिया को ही उलट-पुलट कर
नई-नवेली साफ-सुथरी बना लोगे?

क्या इरादों में इतनी बुलन्दी है
कि पुराने सभी कुछ को अप्रांसगिक करार देकर
नितान्त नूतन रास्ते गढ़ लोगे
इस जंग लगी, खोखली, मौकापरस्त सदी में
आने वाली नई सदी के स्वप्न संजो लोगे?

माना कि जो विकराल यथार्थ तुमने भोगा है
उसने हर पुरातन के प्रति डिगा दी है तुम्हारी आस्था
तुमसे थोड़ा सा अनुभव अधिक है प्रियवर
इसलिए बरबस मन करता है यह कहने को तुमसे
कि अधिक न सही पर थोड़ी सी संस्कृति

थोड़ी सी परंपरा, थोड़ी सी आस्था
जो सहेजी है तुम्हारे पूर्वजों ने अब तक
उसे दाय समझकर ही स्वीकार लो स्वीकार लो
एकाकार कर दो नूतन-पुरातन को
अधिक न सही तो थोड़ा ही
विगलित कर दो अपने अहं को।
फिर जो कुछ तुम कहोगे
वह क्षणिक न होगा
होगा सत्य - शाश्वत - चिरंतन॥

सृष्टिक्रम

बिखेरे हैं अगणित जादू भरे स्वप्निल रंग प्रकृति ने चहुं ओर
ऋतुओं का परिवर्तन
लहरों का नर्तन
चन्द्र का आकर्षण
सूर्य का विकर्षण
पत्ते पौधों में रंगों की विविधता
हर कोंपल में फूट कर कुछ बनने का उत्साह
हर बीज में महावृक्ष की अवस्थिति
मिट्टी का सोंधापन, चतुर्दिक हरियाली
यूं भरती जाती है लबालब जीवन-मदिरा की प्याली।
यही है चिह्न जीवन का
यही कहलाता है सृष्टिक्रम
इसी को हृदयंगम कर जी पाएं तो
होगा सार्थक यह क्षणभंगुर जीवन॥

ग़ज़ल

बेगानों की भीड़ में एक चेहरा भी अपना नहीं मिलता
तेरे इस शहर में यूं तो सब कुछ है अपनापन नहीं मिलता।

हर रिश्ता यहां खुदगर्ज़ी पर है टिका हुआ
हर शख्स इस बाजार में बिका हुआ ही मिलता।

जिन्हें मानकर अपनी कर दी ज़िन्दगी कुरबां
उन्हीं का आज हमें ऐ दोस्त पता नहीं मिलता

किसको सच मानें और किसे समझें झूठ
भंवर में फंसी है कश्ती हमें किनारा नहीं मिलता।

वो जो खाया करते थे वफा और दोस्ती की कसमें
उनकी नज़रों में हमें पहचान का कतरा नहीं मिलता

जो दम भरते थे हमारे नक्शे-कदम होने का
कब अलगा ली राहें उनने पता ही नहीं मिलता।

मंज़िल तक साथ चलने का वादा जो किया करते थे
कहां निकल गया कारवां उनका
धूल का निशां भी नहीं मिलता॥

परिणति

जब रोम की सीनेट में घोंपा चाकू ब्रूटस ने सीज़र की पीठ पर
''अरे तुम भी ब्रूटस?'' कहा सीज़र ने स्तंभित होकर
झेल सकता था सीज़र शत्रुओं के प्रहार
पर यहां तो किया था जिगरी दोस्त ने वार
सह नही पाया विश्वविजेता यह कपट व्यवहार
चुक गयी उसकी अपराजेय शक्ति, गया वह जीवन हार
मुंदती आँखों ने देख डाले जाते-जाते दृश्य कई
पर यह होगी परिणति मित्रता की कभी सोचा ही नहीं
ब्रूटस जो था सीज़र की छत्रछाया में पला
हाय कब इतना गया बदल पता ही नहीं चला
हर पल जीवन में शत्रुओं से घिरा सीज़र न हुआ कभी विचलित
पर अपनों की चोट ने आज उसके विश्वास को कर दिया पराजित।
रोम ही नहीं हर देश में आज भी जनमते हैं सीज़र और ब्रूटस
जिनकी आत्मीयता और प्रगाढ़ता का पहले फैलता है सुयश
किन्तु संदेह और ईर्ष्या की विषैली नागिन अचानक चुपचाप
डस लेती है मित्रता को, रह जाता है मात्र संताप
स्नेह का झरना बन जाता है घृणा का ज्वालामुखी
यह वेगवती निष्करुण ज्वाला न किसी के रोके है रुकी।
भस्म हो जाता है सब कुछ, शेष रह जाती है राख
मधुर संबंध जीवन के यों हो जाते हैं खाक॥

अनुराग गीत

जब जीवन में जागता है अनुराग
फूलों से झरता है मादक पराग

खिलने लगते हैं सुगंधित गुलाब
चेहरे पर आ जाती है नई आब

उमड़ने लगते हैं रंगों के बादल
निकलने लगते हैं इन्द्रधनुष पल-पल

आंखें, हृदय, मन, सब हो जाता है चंचल
भीतर-बाहर सब कुछ जाता है बदल

घिरने लगते हैं पलकों में सपने अनंत
कभी फागुन तो कभी आ जाता है बसन्त

मनमीत से कैसे कहें अपने उर की बात
मिलते ही निष्ठुर विरह लगा देता है घाव

पीड़ा हर्ष की यह अनुपम अनुभूति
इस राह के हर नूतन राही को होती

मन के भावों को कर-अंजलि में डाले
नई डगर पर चल देते हैं मतवाले॥

फागुन महोत्सव

आ पहुंचा है शुभ फागुन महोत्सव
अजमेर नगरी का बिल्कुल न्यारा है यह उत्सव

खूब उड़ें रंग खूब खेलें गुलाल
क्षितिज तक रंग जाए अंबर हरा, पीला, लाल

364 दिन रहें हम भले ही सचेत, सज्ञान
किन्तु होली के दिन भूलें अपना भान

जुड़ें स्नेह के बंध, टूटें कृत्रिमता के आवरण
इस शुभ दिवस पर सौहार्द्र बने हमारा आभूषण

स्नेह, मित्रता, आत्मीयता की पल्लवित हो भावना
आप सभी को इस पर्व पर मेरी शत-शत शुभकामना॥

आओ फिर से महकाएं गुलशन को अपने

अमन और चैन की मिसाल है हमारा शहर
इसमें क्यों घोलें हम फ़िरकापरस्ती का ज़हर?

चूमा करते हैं अकीदत कर ख्वाज़ा की जिस चौखट को हम
उस मुबारक आस्ताने में क्यों बरसाएं नफ़रत के ईंट और पत्थर?

फ़िज़ा में जहां बसी है केवड़े-गुलाब की खुशबू
खून के बदनुमा दाग क्यों अब आएं नज़र?
दहशत से क्यों सूने हो जाएं गली और कूचे?

बसन्त के खुशनुमा आलम में फिर गूंजे कव्वालियों के स्वर
ईद और होली रोज़ गले मिले यहां
न होने पाए खौफ़नाक हमारे चमन का मंज़र
चंद हैवानियत-परस्तों के जुनून की खातिर
क्यों बिसरा दें हम इन्सानियत का पैगाम अमर?

आओ फिर से महकाएं मुहब्बत और वफ़ा से गुलशन को अपने
खिलते रहें भाईचारे के कंवल यहां शामो-सहर॥

मेरे शहर की मायूसी

मेरे शहर में अब
झुकी-झुकी काली घटा,
उमड़ते-घुमड़ते मेघदूत,
बरसने को आतुर सावन के बादल
नहीं जगाते पहले जैसी अनुभूति
न अब नाचते हैं मन के मोर
न ही उड़ते हैं मानस-चकोर
अब विस्मृत हो चले हैं सावन के झूले
अब कहां भरते हैं खुशियों के मेले
अब तो बरसते हैं प्रलय-मेघ
हहरा के टूट पड़ते हैं नदी-नाले
होता है सर्वत्र विनाश का तांडव
करता है काल क्रूर अट्टहास
सुनाई पड़ता है दीन, आर्त्त क्रन्दन
फैलता जाता है जल का मायावी जाल
डूबती जाती है मानो समूची सृष्टि
मेरा नगर बदल जाता है सागर में
पर बूंद भी नहीं बच पाती घर की गागर में।
विनाश के पश्चात होता है शब्दों का नर्तन
भुक्तभोगी जनता को मिलते हैं कोरे आश्वासन
कुछ दिन छाई रहती है खबरों में सुर्खियां
देखते देखते बिखर जाते हैं कई आशियां
अतिवृष्टि का सर्वनाशी अजगर जब करता है भयंकर फुत्कार
और उजड़ने को होता है मेरे शहर का हर घर द्वार
छाने लगती है चहुं ओर मौत की सी उदासी
बादलों के घिरते ही अब तो होने लगती है मायूसी॥

सामने एक कैलेंडर

सामने एक कैलेंडर
जब हवा के झोंके से फड़फड़ाता है,
अपना अस्तित्व दर्शाते हुए
अंततः जब गिर पड़ता है,
सहसा मुझे होना पड़ता है बाध्य
उसे देखने के लिये!
यह निर्जीव, जड़ मुझे बार-बार सचेत कर देता है
मैं गौर कर पाती हूँ
अब इसके चित्र बदल गये हैं,
अरे ... ... माह भी वह नहीं रहे,
पिछली बार जब झाड़ी थी इसकी धूल
उसे गुज़रे भी युग बीत गये ... ...
और मैं आंकने लगती हूँ जब
अपनी उपलब्धियों को
तो पाती हूँ समय गया,
पर कुछ न पाया—
झट लेने लगती हूँ संकल्प अनेक
कि दूसरी बार जब हिलकर
यह मेरा उपहास करे
उससे पूर्व मुझे समेट लेना है—
कुछ ऐसा जिसे मैं अपना कह सकूं॥

वैश्विक ग्राम के नागरिक से

भौतिकता के भव्य महलों के सपने बुनते हो तुम
सहजता की फूस की कुटिया में रहते हैं हम

वैश्विक ग्राम के सतरंगे नागरिक कहलाते हो तुम
स्वदेश की मिट्टी की सोंधी गंध पर इतराते हैं हम

हमारी पुरातनता के हर संदर्भ को यद्यपि नकारते हो तुम
तुम्हारी आधुनिकता को तथापि स्वीकारते हैं हम

क्षितिज को एक छलांग में उछलकर छूना चाहते हो तुम
गंतव्य के हर मोड़ पर स्वयं चलकर पहुंचते हैं हम

अपने ही स्व की कोटर में बद्ध हो गये हो तुम
विश्वमैत्री के पाठ को अब तक दोहरा रहे हैं हम

परंपराओं को रूढ़ि के व्यर्थ बंधन मानते हो तुम
जिनकी जड़ों को नितप्रति सींचते हैं हम

किन्तु फिर भी इसी आस पर प्रियवर बैठे हैं हम
कि एक दिन अपनी जड़ों में फिर लौटोगे तुम॥

ए मेरे वतन के लोगों

ए मेरे वतन के लोगों
मत भरना अब तुम आंखों में पानी
कारगिल में जो नित्य हो रहे हैं शहीद
उन वीरों की जब तुम सुनो कहानी
यह नहीं है अवसर कोरी भावुकता का
जब देश में उमड़ा है जज़्बा कर्मठता का
मात्र आंसू बहाना ही नहीं हैं उत्तर
जब संकट के बादल हों घिरे देश पर
सीमाओं को अपनी हमें और दृढ़ बनाना होगा
शत्रु के लगाए हर अवरोध को हटाना होगा
शहीदों के रक्त की हर बूंद की है यह पुकार
दुश्मन को खदेड़ना है नियंत्रण-रेखा के पार
आओ हम फिर से दिखा दें संसार को
"भारत विश्वविजयी है" गुंजा दें इस हुंकार को॥

पतझड़ से बसंत तक

जीवन बढ़ता ही जा रहा है,
और हम पुराने हो रहे हैं
पतझड़ के पत्तों की तरह
पीले होकर, मुरझा कर
गल कर-सूखकर
क्या ऐसे ही झड़ना होगा हमें भी?

आंखों में आंसू, सर्द आहें, ज़र्द चेहरा
कड़वी सी खामोशी—ऊब सी परिवेश के प्रति
नियमितता ऐसी जो मृतप्राय हो रही हो
मानो लंबी बीमारी ने थका दिया हो ... ...
क्या ऐसे ही रहना होगा हमें भी?

बार-बार कड़वे अनुभवों के घूंट भरना
और ऐसे नयेपन का आना
कि सहसा अपने को अभ्यस्त न बना पायें हम, उसके
आश्वासनों की पुनरावृत्ति के सहारे
निज मन को ही बहला लेना
क्या ऐसे ही बढ़ना होगा हमें भी?

नहीं... नहीं...
मन के किसी कोने से उभरता है यही स्वर
नहीं यह नहीं वह जीवन
जिसकी आकांक्षा की हमने ... ...।
हम प्रतिपल कर्मों से आबद्ध रहें
भर लें नव आशा से स्वयं को

कर दें गुंजित मन के हर सूने कोने को
नहीं रहने पाये अंधकार की क्षीणतम रेखा
हम सींच दें उस सूखी क्यारी को
लहलहा उठे जीवन वृक्ष वहां
और हम न मानें जीवन को पतझड़ का
पत्ता—
इसी तरह निरंतर
सुंदर स्वप्न सजायें हम
और प्रयास करें उन्हें यथार्थ करने का।

जीवन एक और भी है
जहां न आह है
न संताप है
जहां चिर नूतनता है विचारों में,
भावों में
कर्मों में
और लहरों का मधुर संगीत
धुएं सी कड़वी खामोशी को तोड़कर
कर रहा है वातावरण को मुखरित
जहां जीवन स्वच्छन्द है
और मानव-मानव के मध्य
स्नेह भरे मूक आमंत्रणों की मधुर लड़ी
बुझा देती है उस अग्नि को
जिसमें झुलस रहा था उसका अंतर्मन
और वह जीने लगता है जीवन को
अति,
अति,
अति सहज होकर॥

संदर्भ और अर्थ

तुम्हारी सूची में से
अब मेरा नाम हट गया है
क्योंकि मेरे अहं ने शिथिल होकर
तुम्हारे अहं के समक्ष घुटने टेकना छोड़ दिया है

कभी ऐसा भी था युग जब
अपने अज़ीज़ों, आत्मीयों और
विरोधियों की लंबी फेहरिस्त
हरदम तुम्हारी जुबान पर होती थी

और मेरा नाम स्नेह से, अधिकार से
पहले दिखाई देने की उतावली में
बहुधा छलांग ले लिया करता था

और आ जाता था
एक बार नहीं बार-बार तुम्हारे संदर्भों में
पर कहते हैं अर्थ बदलते जाते हैं संदर्भों के साथ
और आज ...
संदर्भ बदल गए हैं
ऋतुएं बीती हैं मन की तुम्हारे भी
और ऋतुराज का सा स्वागत
पतझड़ की सी उदासीनता में
परिणत हुआ है
जो बर्फीली, जमाने वाली ठंडक कब बन जाए ज्ञात नहीं!

मेरे भीतर भी घटा है कुछ
कई बिंब चटखे हैं
कई मान्यताएं कुलबुलाई हैं
कई मंदिर ढहे हैं
पर अभी भी वे खंडहर नहीं बने हैं
किन्तु ढहती हुई रेत पर स्नेह की दीवार कब तक टिकेगी?

तुमसे सीखा आदर्शों का पहला पाठ
और जीवन में पाया
कि आदर्श महज एक तकियाकलाम है
जिसका प्रयोग उन भाषणों के दौरान होता है
जो क्रियान्विति से कोसों दूर हों
तुमसे सुनी समता, न्याय और अधिकारों की परिभाषा
और आंखों से देखा
कि ये सब शब्दकोष में रहने वाले भारीभरकम शब्द हैं
जो उछाल दिये जाते हैं
सुविधापरस्त लोगों द्वारा, उन असहायों की ओर
जो इस भाषा से अपरिचित हैं।
सहअस्तित्व, बंधुता, स्नेह, समता
जैसी मीठी झंकारें
तरंगित होती थी कभी तुम्हारे कोकिल कंठ से
पर जो इन्हें अंगीकृत कर सका
वही आज तुम्हारे लिये बेसुरा, विसंवादी हो गया?
क्या तुम महज एक छद्म आवरण थे?
या एक रंगीन भ्रम?
या मेरी आंखों पर पड़े मोह के वो पर्दे थे
जिसे मेरी अनभिज्ञता ने शाश्वत सत्य माना था॥

तुमने क्या अहमियत दी हमें

तुमने क्या अहमियत दी हमें ?
सूखे नैपकिन की तरह
अपने गीले हाथों को पोंछा
और आश्वस्त हो
रास्ता बदल लिया।

या स्याही-सोख की तरह
अपने मन के जख्मों पर
मलहम लगाने के बाद
मोड़तोड़ कर डस्टबिन में फेंक दिया।

पलायन के क्षणों में
हमें सदा भागीदार बनाया
किन्तु उपलब्धि के पलों में
कहीं हमारा जिक्र तक न किया।
तुमने क्या अहमियत दी हमें ?

प्रेम

एक बंदी कवि ने
फांसी की प्रतीक्षा में झूलते हुए
प्रियतमा के पत्र के उत्तर में
लिख भेजा था तटस्थ उत्तर उसे
कि इस सदी में प्यार
या प्यार के नाम पर किया गया हर व्यवहार
बेमानी है, अल्पजीवी है
और प्यार
एक रोमानी उड़ान है
जिसमें आकाश से उतरते ही
पंछी पंखविहीन हो जाता है ... ...
हर युग ने इस निर्मम सत्य को उकेरा है
पर क्यों ऐसा होता है
कि हर नया पक्षी
दूने चाव से उड़ना सीखता है ... ?
आज प्रेम-स्मृतियों की शाख में लगा
एक सूखा मुरझाया फूल ही तो है
और विश्वास ... झरता हुआ पराग है
जिसे गूंथकर जयमाल नहीं बनाई जा सकती
फिर क्यों
हर युग में उन सूखे फूलों को
अर्थहीन शब्दों की लड़ियों में पिरोया जाता है ?
वे शब्द
जो क्षण का सत्य होते हैं
ग्रीष्म की झड़ी जैसे
जो बरसती तो है
पर चिर अतृप्त, आकुल धरती को
और, और
प्यासा ... ... रीता सा छोड़ जाती है॥

प्रतीक्षा किसी क्रान्ति की

कोई तो हो जगह ऐसी
जहाँ हम दिखा पायें सही स्वरूप अपना
क्यों ओढ़े रहते हैं हम पाबंदियों के नकाब?
ये मुखौटे टूट कर क्यों बिखर नहीं जाते?
और निखरता क्यों नहीं असली रूप हमारा?
हमारे प्रश्नों के उत्तर क्यों नहीं मिल पाते हमें?
और क्यों जुड़ते जाते हैं नए प्रश्न?
कब तक भटकना होगा हमें समाधान की खोज में?
जीवन होता जाता है जटिल दिन-दिन
और सहजता ताक पर रख कर हम
कृत्रिमता की हाट में करते हैं मोलभाव
उठ जाती है प्रशंसा भरी दृष्टि उसी ओर
जिसकी बोली ऊंची हो सबसे इस बाजार में।
हम पीछे-पीछे हंसते हैं उनपर
जिन्हें आस्था हो सादगी पर, सहजता पर।
क्यों अंधे होकर भाग रहे हम
उन पाशविक मूल्यों के पीछे
जो छल रहे हमारे संस्कारों को
हम समझेंगे मूल्य सहजता का तब
जब चरमसीमा पर होगी कृत्रिमता
शायद आये तब नवक्रान्ति कोई
और कर पायें परिष्कार हम अपने मन का॥

आत्मकथ्य

तुम ... ...
जब भी हमारी ओर देखते हो
व्यंग्य या वितृष्णा से होंठ भींच लेते हो ... ...
तुम्हें लगता होगा ... ...
हम बौने हैं
और तुमने
आकाश की ऊंचाई नाप ली है ...
अधिकार गर्व तुम्हें खोखला किए जाता है
पर तुम झूठे मुखौटे ओढ़
सहज होने का नाटक करते हो
अपने हर झूठ को सच और
हमारे हर सच को झूठ करार दे
तुम अपनी कलफ लगी गर्दन
और अकड़े कंधे और अकड़ा लेते हो।
क्या सोचा है तुमने
समय सदा ही एक सा रहेगा?
(ये निष्ठुर हुआ है किसी का आज तक?)
क्या सत्य मिथ्या की राख से सदा ही ढका रहेगा?
जब दिन फिरेंगे तुम्हारे
तुम नितांत अकेले होंगे
तुम्हारी आस्तीनों के सांप, तुम्हारे अपने
विषदंत तुम पर ही गड़ा चुके होंगे
और जहर फैल चुका होगा इतना
कि तिलमिलाने के सिवा तुम कुछ भी न कर पाओगे॥

आज जब तुम नहीं हो

आज जब तुम नहीं हो
तुम्हारा अहसास तुम्हारे होने से ज्यादा मन को घेरे हुए है
पूजा की धूप सा जीवन तुम्हारा
जलते-बुझते निश्शेष हो रहा था
दीये में तेल रीत रहा था
पर तुम प्रखर बाती सी उद्दीप्त थीं।
अब भी गंध उस धूप से महके व्यक्तित्व की
परिवेश में छाकर तुम्हारे होने
तुम्हारे मन पर छाने का बोध
घना गहरा किये देती है
ओ एकाकी मौन दीपशिखा!
संघर्षों का झंझावात जब अस्तित्व को
आन्दोलित कर झंझोड रहा था,
संगी साथी मित्र, परिजन जीवन-संध्या
में धुंधले साये बन गये थे।
कैसे रह पायी दृष्टि में
तथागत की सी चरम शांति
मन में अपूर्व निष्ठा
और वाणी में सुधारस?
कानों ने सुन ली थी आहट
उस पार के तट के निमंत्रण की
और मन मानो रहा उद्यत
करने को सहर्ष महाप्रयाण।
क्या पायी थी कोई सिद्धि तुमने,
या जान लिया था जीवन का मर्म?
कि आते पथ के तुम्हारे साक्षी थे थोड़े
तो जाते के बने बंधु अनंत ... ...!

हम तुम

हम तुम
साथ बैठे
सुख बांटे, दुख बांटे
हल्के हुए और जीवन कुछ सहज लगने लगा
हम तुम
साथ बैठे
कटुता, वैमनस्य का आदान प्रदान किया
अंधड़ चले
दम घुटने लगा
व्यंग्यबाणों से लहुलुहान किया
हम तुम
क्यों बांटे कटुता?
क्यों न बांटे मृदुता?

तुम्हें समर्पित

कभी-कभी अचानक ही
दुनिया में रहते हुए भी
मेरा अस्तित्व कहीं दूर जा पहुँचता है
विस्मृत हो जाता है वर्तमान मानस से
और मेरी उनींदी आंखों में आकर
नियति उडेल देती है अनगिनत स्वप्न
मैं खो जाती हूँ, सो जाती हूँ
इन्हीं अधबुने विचारों की दुनिया में।

और तभी
याद आ जाते हैं वे मधुर क्षण मुझे
जब तुम्हारे और मेरे मध्य के
सारे अंतर जड़ हो चले थे
तुमने मुझसे और मैंने तुममें
सारे विश्व की देखी थी प्रतिच्छाया
सहसा ही यह दोनों ने पाया
कि नहीं थी अपेक्षा किसी तीसरे की हमें।

मन ... ...
हाँ यह मन मेरे बांधने से नहीं बंधता
यह चंचल अश्व किसी चाबुक से नहीं सधता
और चला जाता है दूर-दूर उड़ता उड़ता।
बताओ न कैसे थामें इस गगनगामी को
यह नटखट बालक सा मेरी ज़रा नहीं सुनता
देखो कहां तक पहुंच गया है दौड़ता दौड़ता
और अब दिखा रहा है मुझे दूजा सपना।

न ... वह सपना नहीं, यथार्थ ही कहो
पर कठोर नहीं—
कोमल कोमल सा यथार्थ
हाँ जीवन मैं भी जीती हूँ
जीवन शायद वह है जो कभी
जिया गया था, जिया गया है
और जिया जायेगा।

सर्वनाश के कुछ क्षणों पूर्व तक
नागासाकी हिरोशिमा के भोले मानव
जी रहे थे यही जीवन
आगामी महाकाल से हो अनभिज्ञ
जीवन वह था कभी जिया था जो मानव ने
सुदूर अतीत में तपोवनों की शुचि भूमि में।

जीवन वह है जीता है जिसे आज मानव
मशीनों, शहरों और कारखानों की गर्मी में
मैं कैसा जीवन स्पृहणीय मानूं?

कर सके जिसका गान मेरी कविता
हो कौनसा वह आदर्श
करे जिसका मान मेरी कविता?
... ...
... ...

*"और आदर्श होने लगें जब चूर
तू सोजा, चुप हो जा
कहीं अतीत में खोजा
ओ कविता! ओ मेरी कविता॥"

---

*नौ वर्षों बाद 1980 में जोड़ी ये पंक्तियां

तुम ... ...

उदासी के आलम में अक्सर याद आती हो तुम
सोचती हूँ क्या असर ऐसा है जो भाती हो तुम
स्वप्न में अक्सर मिलने पास आती हो तुम
पर जागरण में लगता है यूं कि दूर दूर जाती हो तुम
क्या कहूं जीवन की उदासी को किस तरह मिटाती हो तुम
यही यथेष्ट है कि मनोमस्तिष्क में आती हो तो न जाती हो तुम॥

जी चाहता है

जी चाहता है लिखूँ एक कविता मैं भी
कविता : जो मेरे भावों को
मेरी वाणी में पिरो सके
दे सके शब्द मेरे अंतस में
आलोड़ित होते स्पंदन को
नहीं कह सकती जिसे मैं मुखर होकर
वही कहने की क्षमता रख पाये मेरी कविता।

जहां सुंदर जीवन की कल्पना
यथार्थ के अट्टहास से भीत, चकित
कभी न उभरने पाये
न, ऐसा रूप नहीं संजोने पाये मेरी कविता

भर दे शब्दों में मेरी व्याकुलता, मेरी आकुलता,
मेरी आशा—मेरी कविता
किन्तु भावों से बोझिल हो न लाने पाये
कहीं शिथिलता—मेरी कविता
क्या लिख पाऊंगी सचमुच मैं भी कविता?

क्या हो सकती है इतनी मेरी भी क्षमता?
जीवन ... ...

(अपूर्ण कविता)

दोस्त मेरे

दोस्त मेरे!
कभी सोचा है तुमने
कि हमारे रास्ते क्यों अलग हो गए हैं?
क्यों महज एक रस्म रह गई है हमारी मित्रता?
और हम स्वांग भरते-भरते बहुरूपिए हो गए हैं।

कभी हमने जमाने को स्तंभित किया था अपनी प्रगाढ़ता से
हम क्षितिज तक साथ जाने और जीने को
उमंगित थे लालायित थे
कहां आ गया अंतराल फिर?
कहां अलग हो गई हमारी मंज़िलें?

तुम—
दुनिया के साथ चलते-चलते
दुनिया के हो गए
और हम चकित हो आहत हो
तुम्हारे बदलते शब्दों के अर्थ तलाशते रहे
हर कोश में ढूंढा दोस्त!

पर नहीं मिल पाया समाधान तुम्हारे बदलते तेवरों का
हर क्षण परिभाषित-परिवर्तित होते नए रिश्तों का।
हमने तुमसे जुड़कर कहीं तिरोहित कर दी थी अपनी निजता
तुमने मात्र अपनी निजता को ही समझा समूची सार्थकता
ये क्या हुआ दोस्त?

तुमने अपनी परिधि को इतना विस्तार दे दिया
कि उसमें हमारा छोटा सा अस्तित्व
बौना होता-होता बूंद भर भी न रह गया
तुम तो वटवृक्ष थे मित्र!

जिसका महाकार हर नन्हे पौधे को संरक्षण देता है।
तुम वटवृक्ष से उमड़ती बरसाती नदी कब बन गए मित्र
कि अपने अंग से लगे किनारों को ही लील बैठे
और प्रवंचना तो देखो दोस्त
कि हम आज भी यह भ्रम पाले हैं
कि तुममें हममें मात्र पहचान ही नहीं
खासी प्रगाढ़ता भी है॥

हम बेघर हैं

हमारा घर
बाहर से ही आकर्षित करता है सबको
बगीचे के मनभावन पुष्प
मन को ललचाते फूल
रोक देते है आगंतुक के चरण
प्रवेश करने के पूर्व ही ...
अंदर ... ...
आते ही सज्जा मोह लेती है मन सबका
कालीन पर रखते ही पांव धंस जाते हैं
मखमली स्पर्श मन को गुदगुदा जाता है
सजे हुए खिलौने, सोफा, टी.वी. और सब लोग
पर हम बेघर हैं।

चित्र हैं सजे हुए ताकों पर,
पंखा घूमता है रफ्तार से,
आधुनिकतम साज-सज्जा है,
भव्य मूर्ति है नटराज की नृत्यमग्न
पर हम बेघर हैं।

बातों की पॉलिश, सूखी मुस्कानें,
चाय के गर्म प्याले से ठंडी आईसक्रीम तक
सब मिलेगा यहां ... ...
नहीं मिलेगा तो अपनत्व
हम सब अजनबी हैं
एक छत के साये में होने पर भी
अलग-अलग कमरों में बंटे हैं
ऊपर पड़ी एक छत
हमें कभी एक नहीं कर सकती।

हमारे कमरों में दरवाजे हैं, खिड़कियां हैं
पर उन सबके मुंह विपरीत दिशाओं में खुलते हैं।
हम सबके व्यक्तित्व बिखरे हुए हैं
हम सब खंडों में जिये जा रहे हैं
जोड़ने को बहुत कुछ है मगर
जुड़ते नहीं हम परस्पर
हम अक्सर एक दूसरे की नज़रों के आगे पड़ते नहीं
और पड़ने पर आँखें चुरा लेते हैं
हम सबकी अपनी दुनिया हैं, अपने संबंध हैं
और बड़ी कुशलता से हम
उन संबंधों को निभाए जाते हैं
पर अपने ही घर में घटने वाली
शुभ, अशुभ घटना से
हम सदा ही असंपृक्त रह जाते हैं।
कितनी विडम्बना है कि
साथ रहने का कोई भी तार जुड़ा न होने पर भी
हम साथ रह जाते हैं
घुटन हो, ऊब हो, टूटन हो
हम फिर भी सहे जाते हैं।
विद्रोह के दबे स्वर
उभरने के पूर्व ही दबा लेते हैं
रोज कहते हैं कि हम सब होंगे पृथक
पर रोज ही साथ रहे जाते हैं
और इसीलिए
इस विशाल भवन के होने पर भी
हम सबकी पीड़ित गुंजार, यही कहे जाते हैं
हम बेघर हैं॥

आभास

यह यथार्थ जो मेरा वर्तमान है
बहुत ... ... बहुत ही सुंदर है वर्तमान मेरा।
तुम और मैं रोज संजोते हैं प्यारे प्यारे सपने
किसी किसी क्षण मैं आकुल हो उठती हूँ
नारी हूँ न? एक प्रकृतिदत्त कमजोरी से व्याकुल हो उठती हूँ
हंसते-हंसते सहसा मैं शोकाकुल हो उठती हूँ
पर तुम ... ...
फिर तुम बंधाने लगते हो साहस मुझे
तुम्हारे पौरुष ने सदा दिया है विश्वास मुझे
कभी ईर्ष्या हो उठती है अपने से ही मुझे
कि विधाता ने दिया है कितना ... ... कितना उल्लास मुझे
मेरी व्याकुलता फिर भाप बनकर विलीन हो जाती है
और फिर मैं अपना अस्तित्व भुला
सिर्फ तुममें—तुममें—तुममें लीन हो जाती हूँ।
मन होता है आंचल उठाकर ढेर सी दुआ मांगू तुम्हारे लिए
अपने सारे सुखों की बाजी लगाकर सब कुछ ले लूं तुम्हारे लिए
पर न जाने कौनसा तार बांधा है विधि ने
कि तुम सहसा पूछते हो, इतनी मांगें सिर्फ मेरे लिये?
कुछ मांगो न उससे तुम भी तो अपने लिये।
कौनसा है वह गुप्त तार जो बांध देता है
तुम्हारी व मेरी आत्मा के सूत्रों को?
हां ... ...
मेरे थामने से नहीं थमती
दिमागी घोड़े की ये उड़ान
सुनो, मानव ही हूँ न मैं भी!
सजाने लगती हूँ भविष्य के सपने

वर्तमान से सुंदर होगा हमारा भविष्य
युगों तक साथ रहने की चिर-संचित अभिलाषा
पूरी होने पर भी नहीं बुझेगी वह जिज्ञासा
बढ़ता ही जायेगा निशिदिन प्रेम हमारा।
फिर एक दिन ... ...
नहीं ... हृदय नहीं चाहता उस क्षण की कल्पना करना
न जाने कौनसी अज्ञात शक्ति
यही भाव भर देती है मन में
कि तुमसे लेनी पड़ेगी विदा मुझको
सुख का कण-कण भोगूंगी मैं
उस महाविदा के पूर्व।
किन्तु प्राण! ... ... उस विदा को चिरविदा की
संज्ञा कभी न देना तुम।
फूलों से है अनंत प्रेम मुझको
और फूलों से ही भर देना मेरी वह डोली
खूब सजा देना उस अंतिम डोली को
जो सिर्फ मेरी काया ही को दूर ले जायेगी तुमसे।
अश्रु की दो बूंद टपक पड़ती हैं इसमें
लिखते हुए स्वयं अपनी ही मृत्यु के बारे में
किंतु नहीं प्रिय ... ... तुम शोक न करना
कोई नहीं ले जा सकता है दूर हमें तुम्हें
आत्मा-आत्मा के संबंध को समझ सकते हैं वही
जिन्होंने जगत के घृणित सौदे में बेचा नहीं अंतरात्मा को अपनी
मेरा संबंध - तुमसे क्या समझा पायेगा कोई?
जितना तुमने - मुझको मैंने तुमको अपनाया है
अपना पायेगा युगों तक किसी को कोई
मुझे गर्व है, अभिमान है, जी हाँ मान है
उस संबंध पर जो चिरकाल तक निभायेंगे हम तुम॥

कब तक यूं तरसेगा ओ मन ... ...

कब तक यूं तरसेगा ओ मन! कब तक तू तड़पेगा?
हुआ अंधेरा, गया सवेरा, फूट रहे हैं तारे
किंतु भ्रम तो तेरे अब तक संशय से हैं कारे
नहीं रोशनी ऐसी कोई जो इस भ्रम को निवारे
बन परवाना, तू प्रकाश की खोज में क्या भटकेगा?
कब तक ... ...

बोल, क्या पाया है अब तक तूने इस जीवन में?
जो अभी से कर्मविरक्ति जागी है इस मन में
कितना क्षोभ और सहने की शक्ति है तेरे मन में?
तिरस्कार भी सहकर कब तक जग में तू विचरेगा?
कब तक ... ...

चले गये जीवन के सुंदर क्षण वो उजले उजले
मन अंबर में छाये जाते बादल काले काले
आह! दु:खद है स्मृति दिनों की जो थे मतवाले
उस स्मृति के सागर को तू कब तक यूं ही मथेगा?
कब तक ... ...

ये संसार मोह का सागर लोग यहाँ के निराले
कुटिलता है ठगती उन्हें जो होते हैं भोले भाले
चेत अरे ओ पागल पक्षी दिल के ये सब काले
जगत विपिन में घृणित से पक्षी अब भी तू चहकेगा?
कब तक ... ...

सेवानिवृत्ति

समय फिसलता जा रहा है मेरी मुट्ठियों से रेत सा
वर्ष, मास, सप्ताह दिन बीते
और अब आ पहुंचा है वह निर्धारित क्षण
जब मेरे व्यस्त, सक्रिय जीवन में प्रस्तुत होने को है परिवर्तन।
पर आज जो भव्य आयोजन है
उसका केन्द्र हूँ मैं
माला-पुष्प-प्रशस्तियां कुछ अश्रुबिन्दु और कुछ बोझिल
कुछ मृदुल पलों की साक्षी हूँ मैं।
एक एक करते खुलते जा रहे हैं अतीत के कई पृष्ठ
मानों एक चलचित्र सा ही घटता जा रहा है अन्त:नेत्रों के सम्मुख
पर क्या सचमुच ही आज यहां उपस्थित ये स्वजन
जान पाएंगे मेरे भीतर का मंथन?
और जीवन के इस रूप से बिछड़ने पर
मन में उठता आलोड़न विलोड़न?
अपने से ही यदि पूछूं मैं
तो क्या आज मैं शून्यवत हूँ?
नहीं—भीतर से आती है ये पुकार
मेरे पास है स्मृतियों का संचित क्रोध
संबंधों का संबल
आत्मीयता का संस्पर्श
और भविष्य का आह्वान
जो मेरे कल को सार्थक कर
मुझमें करेगा अपार जिजीविषा का संचार
और भर देगा मुझमें इतनी नवस्फूर्ति
कि मेरा रोम-रोम
प्रकाश, जीवंतता और आह्लाद से
हो उठेगा सराबोर
हो उठेगा सराबोर॥

बेटा भी एक दिन हो जाता है पराया

बेटी ही नहीं बेटा भी एक दिन हो जाता है पराया
देर से ही सही यह तथ्य अब कुछ-कुछ समझ में आया
बनाने को होता है जब आत्मज नीड़ अपना
फैलाता है पंख अपने सजाता है नित नया सपना।

खोजता है मनचाहा मीत खिलते हैं फूल
पुराने सन्दर्भ जीवन के कुछ पल को जाते हैं भूल
हर पल जीवन बढ़ता जाता है आगे
युवा पीढ़ी क्षण-क्षण आगे ही आगे को भागे।

देश की सीमा को करके पार
क्षितिज तक फैल जाता है उसका संसार
सूने हैं घर के आंगन, खुले हैं द्वार
अपनों के आने का हैं आंखों को इंतजार
कहां हैं अब केवल बेटी ही धन पराया
बेटे-बेटी को आज वक्त ने है एक-सा ही बनाया॥

द्रोणाचार्य से

द्रोणाचार्य!
गुरुदक्षिणा ली तुमने एकलव्य से
उसका अंगूठा मांगकर!
यह निर्मम पुरातन कथा सिहरा देती है
हर नवीन श्रोता को
तुमने अंगूठा ही मांगा था
जो उस गुरुभक्त ने स्वेच्छा से सिर झुकाकर दिया
तब से—तुम कतराने लगे होगे उससे
उस पथ पर जाना त्याग दिया होगा तुमने
जहाँ वह सिर धुनता होगा (या हाथ मलता होगा)।
पर तुमने अच्छा किया गुरु—
अधिकार था अपना जो जता दिया—
यदि तुम आधुनिक गुरु होते—
तो तुम अंगूठा नहीं—
अपने शिष्य के अस्तित्व को
उसके स्वत्व को
उसके अधिकार को
उसके अहम् को
और उसके हर "उस" को
जो तुम्हारे सिंहासन को हिलाता प्रतीत होता हो
उसकी शिराओं में बहते नवोत्साह के रक्त को
झटके से काट देते।
और उसके लिये तुम्हें
न लेना पड़ता अपयश जगत का
न भर्त्सना लोक की ... ...
गुरु हो ना — शिक्षा देते हो
देते हो लक्ष्यबेधी अक्षबेधी शिक्षा
निशाना साधने की (भेदने की भोले पक्षी की आंख को)
क्या स्वयं पारंगत नहीं होते?

मैं क्या कहकर दिलासा दूं उसे?

मैं क्या कहकर दिलासा दूं उसे?
"सभी जाते हैं, वे भी चले गए"
"नियति का अजब खेल है यह"
"विधि का विधान है यह"
"हम मानव हैं, माटी के पुतले हैं"
"अजर अमर तो कोई नहीं"
यह दार्शनिक सत्य क्या वह नहीं जानती?

सुन-सुन कर पक गए होंगे कान उसके
मातमपुर्सी में नई शब्दावली नहीं गढ़ी जाती।

सभी दोहराते जाते हैं रटे रटाये जुमलों को
उसकी बुझी आंखों का सूनापन
उसकी हथेली का ठंडापन
कह रहा है कई जागी रातों की कहानी
जिसके जाते ही नींद भी हो गई है बेगानी।

संवेदना दर्शाने तो कई हैं आते
पर क्या उसके मन की थाह तक हैं पाते।

रिक्त की कसक क्या जताई जा सकती है
मन की आग क्या दिखाई जा सकती है
मेरे होठों तक आकर रुक-रुक जाते हैं शब्द
उसके घावों का मरहम नहीं बन पाते हैं शब्द
मैं थामकर उसके हाथों को हो जाती हूँ मौन
भग्न हृदय की पीड़ा तक पहुंच सकता है कौन?

हलाहल-अमृत

जब होने लगे हर रास्ता बन्द
और स्वप्नों की मादकता को यथार्थ की कटुता लीलने लगे
लहराने लगे कुमन्त्रणाओं का विषैला सागर
हर ओर आभासित हो षड्यन्त्र
वे ही करें छल जो हों निकट और आत्मीय
दिन में ही सूरज छिपता सा दिखे
और दिशाएं विपरीत बोध से भर उठें
राह के साथी भी कर लें किनारा
और सामने हो लंबा, विस्तीर्ण एकाकी पथ
क्षितिज तक धुंधलका, कुहासा और अंधकार
घटाटोप सा पाकर मन-मयूर के नृत्य को कर दे बाधित
तब, हाँ तब ढूंढना अपने भीतर ही विकल्प
उधेड़बुन में तलाशना जीवन का सत्य और ऋत
तुम्हें भी हलाहल पीकर ही अन्ततः मिलेगा जीवन का अमृत॥

तुम्हारे न होने का समाचार मिला है मित्र

कल तुम्हारे न होने का समाचार मिला है मित्र!
स्तब्ध रह गई हूँ मैं
जैसे कि हर बार रह जाती हूँ
जब-जब कोई अपना
अतीत का हिस्सा बन जाता है।

क्यों होता है ऐसा?
कि अचानक हँसता, खेलता, बोलता, चलता
दुनिया की हर क्रिया-कलाप करता
कोई बहुत अपना
अचानक शून्य में विलीन हो जाता है।

रह जाती है उसकी तस्वीरें, कपड़े
किताबें, मेज, कुर्सी, बिस्तर
जो हर क्षण उसके होने का अहसास दिलाते हैं
बस नहीं सुनाई पड़ती उसकी आवाज़
उसकी खनकती हँसी
यूं जाकर भी क्या सचमुच चला जाता है कोई?

यह कल की सी ही तो बात है मित्र।
हम अर्से बाद मिलकर बैठे थे
खुलकर हंसे थे, की थी जी भर कर बातें
दिया था उलाहना भूल जाने का एक दूसरे को
लिया था वादा बहुत शीघ्र और बार-बार मिलते रहने का
इस बार वादाखिलाफी तुमने की है या मौत के जादूगर ने,
पता नही ... ...।

तुम्हारा जाना, एकदम ही चले जाना
क्या स्वीकार पाएगा मेरा मन?

अभी तो तुम्हारा पत्र मेरे हाथों में फड़फड़ा रहा है
जिसमें तुम्हारा स्पर्श ताजा-ताजा सा लगता है
कैसे मिट पाएगी मन से मधुर स्मृति उन पलों की
जो मिलकर फिर से सहेजे थे हमने
की थी बातें मधुर अतीत की
महक उठा था वर्तमान भी हमारा।

आज अचानक तुम भूत हो गये हो मित्र!
हो गए हो हर सुख और दु:ख से परे
फेंक दिया है मुझे यादों के कांटेदार जंगल में
तुम आये थे करने ''विदा'' मुझे
वह अलविदा होगी क्या मैं जान पायी थी?

अभिव्यक्ति गूंगी हुई

तुम्हारे और मेरे बीच में
पसरा हुआ है सन्नाटा
शब्दों का अभिराम नर्तन थम गया है
अभिव्यक्ति गूंगी हो, सिमट गई है कोने में
हम नितान्त अजनबी से ताकते हैं अब शून्य में
संबंधों की ऊष्मा ने पहन लिया है हिम-धवल कफन
आवाजों की रौनक चुप्पी में हो गयी है दफन।

न अब स्नेह का व्यवहार
न कटूक्तियों की बौछार
न बाकी है व्यंग्य विद्रूप
न जीवन की सहज छांव-धूप
अब नहीं होता यहां कलरव
रव जो था अब हुआ है नीरव।

अरुणिम संध्या बनी काली रात
किसी शत्रु ने ज्यों लगाई हो घात
विगत जनम सा लगता है अतीत
जीवन-घट ज्यों अब गया हो रीत।

स्वप्निल से लगते अब संबंध
जीवन गति ही हो चली मंद
क्या होनी थी यही परिणति?
वह स्थायी भाव जो कहलाता है इति?

सृष्टि का क्रम

कभी घिरते हैं बादल, छाता है गहन अंधेरा
कभी निकलता है सूरज, होता है स्वर्णिम सवेरा

कभी नाचता है मन-मयूर बंधती है आशा
कभी शिथिल हो जाता है मन-पंछी घिरती है निराशा

कभी छाता है बसंत, खिलते हैं फूल
कभी जलती है धरती उड़ती है धूल

कभी भागता है, सरपट मन का चंचल घोड़ा
कभी थक जाते हैं कदम, चलकर ही थोड़ा।

परिवर्तन है प्रकृति का अटल नियम
सुख-दुःख, दुःख-सुख का यूं ही रहता है क्रम

हम भले ही इस सत्य को न कर पाएं सहन
भार हर कंधे को करना ही पड़ता है वहन।

अतः आओ अब बन जाएं समदर्शी हम
चलता रहेगा यूं ही सृष्टि का क्रम॥

सूरज से

मत ओढ़े रहो सूरज बादलों की रजाई
कब तक लेते रहोगे तुम यूं ही अंगड़ाई

तुम्हारे सोने से छा गया है कोहरा ही कोहरा
नहीं दिखता मौसम का वो रंग सुनहरा।

मन पर चढ़ने लगी है उदासी की परत
उड़ने लगी है पृथ्वी के चेहरे की भी रंगत

खोया सा दिखता है धरती का उल्लास
प्रकृति की चंचलता का नहीं होता आभास

उष्म संबंधों की झील सी ज्यों जमने लगी है
जीवन की गति ही सहज ज्यों थमने लगी है।

तुम्हें तो सूरज अभी बहुत चलना है
पल-पल चुनौतियों और संबंधों की आग में जलना है

तुम तो बने हो सूरज सतत चलने के लिए
अपने आलोक से अंधकार को ढकने के लिए

अपने संकल्पों से बिगड़ती को बनाने के लिए
अपने प्रयासों से संसृति को सजाने के लिए।

झेलनी पड़ेंगी तुमको भी बाधाएं कई
कुछ होंगी चिरपरिचित और कुछ नई

करेंगे तुमकों भी लोग छलनी और हताहत
मत होने देना अपने विश्वास को आहत

उठो सूरज, जागो और फैला दो प्रकाश
उदास चेहरों पर फिर लौटे जीवन का हास॥

सूनी दुपहरी

भाव लगता है बिखर गये हैं
स्थिरता, मूल्य, जीवन ... ... ?
प्रश्न उठते हैं और
स्वयं ही
मौन हो सहम जाते हैं
हम कौन हैं ? क्या होंगे ?
रहस्य यह—सुलझायेगा कौन ?
पता नहीं ... ...
ये खुशी—ये उदासी—क्यों आती है ?
कैसे जाती है ?
पता नहीं !
इन अधूरे प्रश्नों का उत्तर
शायद कभी नहीं मिलेगा
शायद इसी अटकल, भटकन में दिन गुजरते जायेंगे
और भविष्य में इसे ही
पुकारा जायेगा जीवन कहकर॥

सिद्धांत और सत्य

आज मैंने उसकी जिज्ञासा का समाधान किया
यह कहकर कि आलोचना से डर जाना कायरता है
उसके मुख पर आने लगे भाव कुछ संतुष्टि के
और हुआ मन मेरा भी तृप्त
प्रभाव जानकर अपना उसपर।

पर, तभी सुना मैंने
चार जनों को कुछ कहते
उनके वार्तालाप में सुन अपना नाम
कान हो गये चौकन्ने
ठिठक गए पांव मेरे।

तो वे कह रहे थे कुछ मेरे बारे में?
और तबसे अब तक मैं संलग्न हूँ
हर यथासंभव बात को सोचने में
जिसमें जोड़ा गया हो मेरा नाम
सहसा लगने लगा है मुझको
सिद्धांत और सत्य में कितनी दूरी है॥

सब कुछ दांव पर लगा कर ... ...

सब कुछ दांव पर लगा कर
जिसे मन से पूजा हो
समर्पित हो एकाकार होना
जिसमें चाहा हो
फिर भी कोई द्वैत शेष रह जाता है
जब अहम् से टकराता है अहम्।
दो बिंदु तिर्यक हो एक तो हो पाते नहीं
समांतर की तरह साथ चलते हैं
बिना मिलने की नियति लिये
जीवन क्यों रीतने लगता है बीतने के साथ।

उत्साह, भावना, प्रेम जो आलोड़ित कर
स्वप्नों का इंद्रजाल बुना करते थे
क्यों इतनी शीघ्र बिखरने लगते हैं?
फिर ... ...
दोष किसका?
उम्र का? भावना के ज्वार का?
या उस मोड़ का
जिसे तब हम मानते हैं सर्वस्व।

अपने रक्त संबंध सहसा धूमिल हो उठते हैं
पागल सी जिद मन पर सवार होती है
साथी को इन सब संबंधों से परे मानते हैं हम ... ...
पर साथ कब तक?
कितना कोई निभा पाया है किसी का
एक जीवन है
हम केंद्र में रहे भी तो कब तक?

रेत, नदी और प्यार

एक बरसाती नदी
अपने उद्दाम यौवन की बाढ़ में
उफन उफन कर जब बहती है
वह उसका सत्य तो होता है
पर शाश्वत नहीं
क्योंकि
बीत जाने पर ऋतु
उस वेगमयी जलधारा का
क्षीणप्राय अवशेष भी बचा रहता नहीं।
रह जाती है तट पर की
सूखी बालू
जो फिसल जाती है
हाथ पर भी ठहर नहीं पाती।
कभी लगने लगता है मुझे
तुम्हारा अस्फुट स्वरों का मादक खिंचाव
जिसने अनजाने ही मोहा था मुझे
तुम्हारा प्रगाढ़तम स्नेह
जिसने बांधा था मुझे
तुम्हारे चिर प्रतीक्षारत नयन
जिन्होंने खींचा था मुझे
उसी वेगमयी बरसाती नदी
की तरह थे
जो जब बहे तब कूलों को तोड़कर
बहे
और फिर जिसके कूल इतने
सूखे
कि रह गया दूर तक रेत का ही विस्तार
रेत — जो इतनी चिकनी है कि
छूते ही फिसल जाती है॥

खाली गगरी

वह भरती भरती ही गई पनघट पर अपनी गगरी
पर यह रीतती ही चली गई
आशा का नीर कभी पाया नहीं उसने
सारी दुपहर यूं ही बीतती चली गई।

चारों ओर की निस्तब्धता में
अंतर का सूनापन भी उमड़-उमड़ बाहर जाने लगा
मन के कोने से बाहरी जगत तक
बार बार, उमड़ उमड़ टकराने लगा।

हर बार एक प्रश्न उठा करता था मन में
और हर बार उसे थपकी देकर सुलाया गया था
जीवन क्यों? ये हलचल क्यों? क्या होनी है
इसकी परिणति?

इस सारे संग्राम का अन्त यदि शांत निद्रा ही है
तो क्यों इतनी भटकन, इतने पड़ाव
ये विरोधी मन डाले बार-बार?

आज वही प्रश्न सहसा जाग गया
और उठकर उधमी नटखट बच्चे सा
बार बार उसी को कोंचता गया
वह निरुत्तर बनी
कुछ कह पायी?
नहीं॥

मांदें

अपने अहम् से बढ़कर
शायद माना होगा मुझे कभी तुमने
पर वो एक भ्रान्ति थी
जो तुम्हें और मुझे
एकसाथ ही हुई थी
उन्माद के क्षणों में
तुमने माना होगा सर्वस्व मुझे
और मैंने अल्हड़पन में
सारे विश्व को सिमटा दिया होगा तुममें।

पर अब
हर बीतता दिन
इन अहसासों को गाढ़ा करने लगा है
कि आवेश के क्षण सत्य तो होते हैं
पर मात्र इतने ही कि
एक दंश के समान वे पहले
झटका व फिर पीड़ा देते हैं।

झटका लगने पर
चेतना सहसा स्पंदित होती है
और
स्पंदन ऐसे बेनाम झंकारों से
भर देता हैं हमें
कि वो मीठी सिहरन रखते हैं
या बर्छियों सी चुभन
हम नहीं जान पाते
पर इतना निश्चित है कि आज
हम दो मांदों के स्वामी
उन नरभक्षियों से
अपने-अपने अधिकारों की
गुर्राहट से
गुंजा देते हैं मन के बीहड़ को
चौकन्ने होकर प्रहरी से
जागते हैं— आशा यही लिये
मेरी मांद इतनी सुरिक्षत
हो कि आहट मात्र भी न
आ सके किसी अन्य की।

क्या यही होनी थी परिणति
हमारे स्नेह की—
उन क्षणों की
जिन्हें चिरंतन
समझ हमने विश्व के
हर परिचित को पराया माना
और अपनी दुनिया अपनी बांहों
की परिधि में बसा ली थी।

आज बाहें- पांजे
हो गयी हैं और
मुख लहुलुहान
शेष बची है मात्र गुर्राहट
दो मांदें- बीच की खाई
और सुदूर गूंजती
गुर्राहट की प्रतिध्वनि॥

प्रभु

तुम्हें तलाशने की चाह
मुझे ही नहीं
युग युगांतर से मेरे हर अनदेखे यात्री बंधु को
कहाँ कहाँ नहीं ले भटकी है
सुबह की अजान में
गोधूलि की आरती बेला में
रात्रि के बजते चर्च के
समय सूचक घंटों में
हर जगह तुम्हारी पगचाप सुननी
चाही है मैंने।

पर सुबह की प्रतिध्वनि टकरा उठती है शून्य से
गोधूलि की धूल उड़कर शांत हो जाती है
और चर्च का प्रांगण सन्नाटे से भर उठता है
निश्शब्द है—अनुत्तरित है मेरी हेर टेर
पर हारी नहीं हूँ मैं—
पाया है, महसूसा है तुम्हें मैंने
उन क्षणों में जब
शून्य, महाशून्य से भर उठेंगे
प्राण मेरे—
क्षितिज तलाशे बिना ही
डूबने लगी थी नैया
प्रगाढ़तम अंधकार के, संशय के क्षणों में
संबंधों का खोखलापन उघड़ आया था जब
संवेदनशून्य लगने लगा था हर पूर्व आत्मीय

तुम्हें ही आराधा था मन के हर अंश ने—
अलग अलग रूपों में
मन ने पायी थी सांत्वना तुम से
अनकहे ही विश्वास की अगाध
रसधारा से संचित किया था तुमने—मुझे
जीने की चाह फिर से दी थी मुझमें तुमने—
संसार में लिप्त मेरा यह मन
न मिल पाता हो तुमसे प्रतिपल
किन्तु जान पायी हूँ यह
कि हर अंधे मोड़ पर मेरे इष्ट जब
पीठ दिखा देंगे
तुम्हारा सुकोमल परिचित स्पर्श तब भी थपथपा देगा मुझे

नववर्ष

हो नया वर्ष यह पुलक वर्ष
सृजन वर्ष— अनुभूति वर्ष
हर ओर हो नव मोद-हर्ष
झेलें हम कई बार संघर्ष
किन्तु टूटन न जकड़े हमें
अपकर्ष से ही निरंतर उत्कर्ष।

जय हो या पराजय हो
विकास हो या क्षय हो।

भीतर की अनंत शक्ति
की सदा सर्वदा जय हो
उर्जस्वित हो अणु-अणु
विकसित हो व्यक्तित्व रेणु
हो जाए साकार हर सपना
यही है आज मनोकामना॥

ऐ दोस्त!

तुम हो तो मौसम लगता है खुशनुमा
तुम नहीं तो सबकुछ है बदनुमा
तुमसे नहीं छुपा है मन का कोई राज
तुम हो दोस्त, हमदर्द, हमराज।

दुनिया के सितम सब रुलाते हैं हमें
हम दिल की गहराइयों से बुलाते हैं तुम्हें
यूँ तो दर्द का एक सिला है ज़िंदगी
तुम्हारे करीब प्यार का दरिया बन जाती है ज़िंदगी
मायूसी का जब-जब छाता है आलम
तुम्हें शिद्दत से याद करते हैं हम
न अब किसी से शिकवा न गिला है हमको
तुम्हारी दोस्ती की नायाब सौगात जबसे मिली है हमको
दुनिया तो करती है पल-पल पर हमें आहत
तुमसे मिलती है ऐ दोस्त दिल को राहत॥

कब तक?

हम यूँ गिनते गिनते
उम्र के न जाने कितने पड़ाव
छोड़ते गए
हर बार वर्तमान को नकारा
भविष्य को धिक्कारा
और अतीत के रोमानी कुहासे में
उजाला ही उजाला देखा
काश हम जी पाते
यथार्थ को स्वीकार कर
सहकर समेटकर
भागते जीवन का हर पल सत्य भी है और मिथ्या भी
अब गुंथे रहकर जीना शायद मानी नहीं रखता
हम भी क्या यूँ ही
बिखराव की नियति को
दम तोड़ते संबंधों को
मृतप्राय अनुभूतियों को
तटस्थता से निगल जायें पचा जायें।

अंतर में हो यदि हाहाकार
भावनाओं का होता रहे आलोड़न
कस उठे इक इक तार इतना
कि दूसरा क्षण संभावित हो टूटन का
झन्नाटे का
और इतने गहरे सन्नाटे का
पर उस एक पल से,

सांस रोके करते रहें तीव्र संघर्ष
घुन बनकर चाट जाने दें
दिमागी कीड़ों को व्यक्तित्व अपना
ओर दबाते रहें संस्कारों की
मटमैली पर्तों के नीचे अपने
चिर विद्रोही मन को।

विडंबना लेकर सहज होने की यह
नाशमयी वृत्ति—कब तक
कब तक सालेगी—मथेगी मन को?
(उत्तर न मिला अब तक)।

जीवन

जीवन बढ़ता ही जा रहा है
और हम क्षरित हो रहे हैं।
पतझड़ के पत्तों की तरह
पीले होकर मुरझा कर गलकर—सूख कर
क्या ऐसे ही झड़ना होगा हमें भी ?

आँखों में आँसू, सर्द आँहें, जर्द चेहरा
कड़वी सी खामोशी, ऊब सी परिवेश के प्रति
मृतप्राय सी दिनचर्या
मानो लंबी बीमारी ने थका दिया हो
क्या ऐसे ही जीना होगा हमें भी ?

बार-बार कड़वे अनुभवों के घूँट भरना
और नयापन ऐसा मिले कि सहसा
अपने को अनुकूल न बना पायें हम उसके
आश्वासनों की मृत पुनरावृत्ति के सहारे
निज मन को ही बहला लेना
क्या ऐसे ही बढ़ना होगा हमें भी ?

नहीं ... ...
मन के किसी कोने से उभरता है यही स्वर
नहीं ! यह नहीं वहं जीवन जिसकी कामना की हमने
हम प्रतिपल कर्मों से आबद्ध रहें
भर लें नव आशा से स्वयं को
कर दें गुंजित मन के हर सूने कोने को
नहीं रहने पाये अंधकार की क्षीणतम रेखा

हम सींच दें उस सूखी क्यारी को।
लहलहा उठे जीवन पौध वहाँ
और हम मानें जीवन को पतझड़ का पत्ता,
लाएँ जीवन में वसन्त सी नूतनता
परिवेश में महके सहजता, स्वच्छन्दता
दूर हो निराशा का तम
जीएँ जीवन आशा से
आह्लादित हम॥

विचार

विचार ... ... विचार ... ... विचार
विचित्र विचित्र विचार
जीवन की हलचल में
कर्मों की दौड़धूप में
व्यस्तता के चरम क्षणों में भी
चिपके रहते हैं अंतर्तम में घुसकर
व्यक्तित्व को बाह्यरूप से
जुड़ा दिखाने के हर प्रयत्न को
नाकारा कर देते हैं—
अपने बिखराव को जितना समेटने का
प्रयास किया जाता है
उतना ही बिखर जाते हैं हम।
अक्सर होता यह है कि
हम डूबे हों किसी महत्त्वपूर्ण वार्तालाप में
कि सहसा अवचेतन की सरहदों से
ताक-झांक कर देखने लगते हैं ये हमें
और फिर हम, हम नहीं रहते
उलझनें चढ़ाकर करते रहते हैं दैनिक समस्याओं के समाधान
पर होनी प्रारंभ हो जाती है वह प्रक्रिया
जो पर्वतों पर से, पत्थरों से लुढ़ककर
चूर-चूर कर रज बनने जैसी होती है।
और हम घुसते जाते हैं
अकेलेपन की उन खंदकों में
जो गहरी तो बहुत हैं पर गूंज जिनकी
ऊपर तक सुनाई नहीं देती
और अनुत्तरित रह जाती है हर पुकार॥

मित्र तुम्हारे लिए

हो तन स्वस्थ—हो मन स्वस्थ
हे मित्र तुम्हारे जीवन का हो हर आयाम स्वस्थ

मन में जागे दृढ़ विश्वास
हो रुदन समाप्त, फैले हास
पल्लवित हो मन में मधुमास
सद्कर्मों की छाये उजास
व्यक्तित्व उन्नयन में ही बीते तुम्हारा वक्त
हे मित्र तुम्हारे जीवन का हो हर आयाम स्वस्थ।

भीतर स्पंदित हो अटूट शक्ति
जीवन के प्रति बढ़े और अनुरक्ति
ह्रासोन्मुख मूल्यों से हो विरक्ति
नवनवोन्मेष के प्रति उमड़े भक्ति
यही है हमारी आज कामना व्यक्त
हे मित्र! तुम्हारे जीवन का हो हर आयाम स्वस्थ।

हिमाचल

देवभूमि का शस्य-श्यामला आंचल
ओढ़े शान्त मुद्रा में तपस्वी सा हिमाचल
हरीतिमा का चहुं ओर है साम्राज्य
अद्‌भुत है प्रकृति का यह सुराज्य
टप-टप ध्वनि वर्षा की जब होती
मन में अनन्त आनन्द सृष्टि होती
सादगी की प्रतिमूर्ति यहाँ के लोग
वैराग्य को साधते त्यागकर भोग।

तन-मन में व्यापी इतनी सुन्दरता
जिसका उपमान अन्य कहीं न मिलता
चीड़ और देवदारू का फैला जंगल
हर दिन हर पल यहाँ रहता मंगल
अन्तर्मन को विचित्र पुलक सी होती
यहीं बस जाने की तीव्र ललक सी होती
घाटियों से दिखते अनेक दृश्य अभिराम
हर ओर है प्रकृति नटी का दृश्य ललाम
मिट जाता यहाँ आकर मन का हाहाकार
हे नगपति की भूमि! तेरा शत-शत जयजयकार॥

बुद्ध

बुद्ध
बहुत भीतर तक शोधा होगा तुमने सत्य को
बहुत गहरे पैठकर समझा होगा दुःख को
बहुत संवेदना से जाना होगा वार्द्धक्य को
दी होगी तिलांजलि कई बार सुखों को
कठिनाई से बिसराया होगा यशोधरा को
कई बार स्मरण किया होगा नन्हें राहुल को
गहन दृष्टि से देखा होगा जीवन को
कई बार मारा होगा अपने मन को
क्षण-क्षण तपाया होगा अपने तन को
भीतर तक फैलने दिया होगा विराट शून्य को
घेर लिया होगा कभी-कभी आकुलता के अंतर को
अनुभव किया होगा तुमने भी कभी अन्तर्द्वन्द्व को
पाया होगा तभी तुमने चरम सत्य को
जब किया होगा वरण एकाकीपन को॥

आओ करें यात्रा

चारों ओर पसर जाती है कभी-कभी सन्नाटे की चादर
और छा जाता है शून्य का विराट साम्राज्य
ध्वनि के सभी साज खो जाते हैं कहीं
लेकर साथ विगत, वर्तमान और भविष्य के बोध को भी
गूंगे से हो तलाशने लगते हैं हम रव
धरती से आकाश के छोर तक ढूंढते हैं उस को
चंचल हिरण सा चौकड़ी भरकर दूर भाग जाता है शब्द।
फिसलती रेत सा हाथ से छूट-छूट जाता है शब्द
क्षण प्रति क्षण कोलाहल के आदी हम सांसारिक मनुष्य
भयभीत होते जाते हैं चुप्पी के अघोष से
क्यों न कभी उठाएं आनन्द इस क्षण का भी ?
जो नहीं होता सहज सुलभ नितप्रति की आपाधापी में।
आओ करें यात्रा अन्तर के अनदेखे पड़ावों की
आओ करें स्वागत शांति के चरम काम्य पल की॥

साधें अपना युग-धर्म

प्रगाढ़ता का जो कभी भरते थे दंभ
बिखरते, चटकते, बदल जाते हैं मन के वे संबंध
सिद्धान्त की चौखट से व्यवहार की दहलीज तक
आते-आते शून्यप्राय: रह जाते हैं अनुबंध
समय की मार से नहीं बच पाता जीवन का व्यवहार
सूख जाते हैं वो उपवन जो रहा करते थे कभी गुलज़ार
पराये नहीं जब अपने ही लगाते हैं घात
दरक जाता है मन का दर्पण, छूट जाता है साथ
भरने को होता है जब प्रफुल्लित हो, ऊंची उड़ान
दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है तभी सहसा जीवन-यान।
जीवन के एक पड़ाव पर शाश्वत है एकाकीपन
ज्यों आता है वार्धक्य जब बीत जाता है यौवन
तो एकाकी होकर भी आओ हम करें अपना सहज कर्म
चलें अपने मूल्यों पर साधे अपना युग-धर्म॥

विश्वास

तुम्हारे कठोर नखों ने
तुम्हारे व्यंग्य बाणों की गुलेल ने
घायल कर दिया है मेरे मन के राजहंस को।
अब तक झर-झर कर हो रहा है
रक्त प्रवाहित मेरे टीसते घावों से
और तुम देवदत्त से विजय-गर्व में चूर
मानते हो अब भी उत्पीड़न को अधिकार अपना
तुम्हारी गुलेल से घायल हंस, उसकी चीत्कार
उसका क्रन्दन, उसका रुदन, उसकी आर्त पुकार।
सब कुछ अनदेखा अनसुना कर जाते हो तुम
किन्तु उस वत्सल तथागत के युग में और आज भी
हंस पर अधिकार तुम्हारा नहीं सहलाने वाले हाथों का है
जिसने उसके क्षतों पर फेरा था अपनी करुणा का हाथ
सेवा सुश्रुषा कर दिया था उसे अभयदान
मुमुर्ष प्राणों में फिर लौटाया था जीवन का स्पंदन
तुम्हारे पौरुषमय स्फीत अहं का भी एक दिन अवश्य होगा अवसान
करना होगा तुम्हें भी अब संगिनी का सम्मान॥

अतीत के झरोखे से ...

विशेष अवसरों पर
अपनों के लिए
लिखी कुछ कविताएँ

जीवन की स्वर्ण-जयन्ती पर

यूँ बीत गये हैं जीवन के पचास बरस
ज्यों पलक झपकते बीतता है एक दिवस
बचपन में पाया माता-पिता का असीमित प्यार
यौवन में रही जीवन साथी से इकरार या तकरार
चुना तुमने अध्यापन का चुनौती भरा पेशा
पर देख दुर्दशा उच्च शिक्षा की बिखरा मन का रेशा-रेशा।

फिर सोचा क्यों न बच्चों को दुलराएं हम
कॉलेज से स्कूल जगत में यूँ आए तुम
अजमेर नगर को दिया एक अनूठा उपहार
सेन्ट स्टीवन्ज़ बना तुम्हारा सपना साकार
नर्सरी से कक्षा दो जो चली पहले बरस
होती रही प्रगति फिर बरस दर बरस
तुम भूले घर का और बाहर का भान
सेन्ट स्टीवन्ज़ ही थी तुम्हारी ज़मीं तुम्हारा आसमान।

कई आँधियां आईं कई तूफानों ने किया हाहाकार
डगमगाती रही कश्ती पर छूटी न हाथों से पतवार
अनुपम ने सार्थक किया हमारा माता-पिता होना
शेफाली ने महकाया अपने घर का हर कोना।

पर ये दो ही तो नहीं हैं तुम्हारी संतान
बच्चा-बच्चा स्कूल का मानता तुम्हें पिता समान
पाया बहुत स्नेह मान तो गंवाई बहुत है सेहत
स्वर्ण जयन्ती है जीवन की और तो ले लो कुछ राहत
स्कूल और परिवार को तुम्हारी है बहुत बहुत जरूरत
अब ले लो व्यस्तता से थोड़ी सी मोहलत
पचासवीं वर्षगांठ पर आज यही दुआ है बस
जियो तुम सार्थकता से बहुत-बहुत-बहुत बरस॥

जबसे हुआ है हमारा साथ

जबसे हुआ है हमारा साथ
भाग्य ने सदा लगाई है घात
खुशी के पल रहे क्षणिक
और दु:ख हमें मिले अनगिनत।

हम घिरते रहे अनंत चक्रव्यूहों में
और करते रहे सतत प्रयास तोड़ने का इन्हें
कभी लगी हाथ आशा
कभी मात्र हताशा
दु:ख सुख तो है जीवन के क्रम
पर हमें कुछ अधिक ही मिला व्यतिक्रम
हम जीवन डगर में जब-जब चाहते उत्कर्ष
तब-तब बाहें फैलाए मिलता संघर्ष
कभी हुई हम पर आशीर्वादों की वृष्टि
कभी हमसे दूर हुई हर सुख-सृष्टि
विश्वामित्र बन फिर हमने किया नवनिर्माण
बनाया एक समानांतर संसार अभिराम
हमारे प्रयासों को पहले माना सबने बौना
अब कहते हैं हम छू चुके हैं क्षितिज का कोना।

जो कतराते थे पहले रहते थे हमसे दूर-दूर
वो अब वास्ता दे मित्रता का बरसाते हैं स्नेह भरपूर
देख संसार का स्वार्थ का रिश्ता
हममें आने लगती है थोड़ी सी कटुता
छाते ही रहते हैं नई-नई विपदाओं के बादल पल-पल
डिगने लगता है कभी-कभी हमारा मनोबल

पर क्यों हम रस्सी में देखें सर्प की छाया
क्यों हो क्षीण मनोबल—यह तो है जग की माया
बाधाएं अब भी आती हैं, आएंगी बारबार
राई सी बात बन जाती है पहाड़,
पर इन बाधाओं से
नहीं हमें डरना होगा,
साथी जब हम तुम हैं साथ
तो चट्टानों को पिघलना होगा॥

सोनू की 22वीं वर्षगांठ पर

तुम्हारी नन्हीं उंगलियां थामे
मैंने सहलाया तुम्हारे बचपन को
वो पौधा अब लहलहाकर
बन गया है एक छायादार पेड़
जो अपनी शाखाओं प्रशाखाओं को
दिन-दिन अभिवृद्धि की ओर
कर रहा है उत्साहित हो, अग्रसर
जीवन के आज हो रहे हैं पूर्ण बाईस बसन्त
मन चाहता है बरसा दूं तुम पर आशीषों के पुष्प अनन्त।

सदा-सर्वदा जीवन में रहे हरियाली
और छाए तुम्हारे जीवन में खुशहाली
क्षितिज तक जाने का सपना
एक दिन हो तुम्हारा अपना
मेरी ममता का अगाध सागर लहराकर
करता है प्रभु से यही विनती सर झुकाकर॥

दीपावली

दीपावली के दीपक करें जगर-मगर
हो प्रकाशित तुम्हारे जीवन की डगर-डगर
आलोक के छाएं इन्द्रधनुष सुनहरे
चिन्ता, दुःख कभी क्षणभर भी पास न ठहरें
जीवन बन जाए एक अनुकरणीय उदाहरण
जहां भी पड़ें प्रिय आत्मज तुम्हारे युगल चरण।

तुम्हारी मधुरिम, मोहक मृदुल मुस्कान
और-और अधिक सदा चढ़े परवान
हर सपना पूरा हो तुम्हारे जीवन का
लहरों से संघर्ष कर बढ़े आगे जीवन-नौका
तुम्हारे परिवेश में फैले ज्ञान का उजाला
सदा आनन्द में रहे लीन मन मतवाला
आशीषों से भर जाए तुम्हारा जीवन-पथ
तुम्हें दुलार, प्यार, शुभकामनाएं शत-शत॥

विदा की इस बेला में

तुमने हमको उपहार दिया
इतने प्यार से मार दिया
हम तो हैं हैरत में इतने
कह भी न सके शुक्रिया
तुम जा रहे हो नए जीवन में
बस आशीष ही आशीष है मन में
ज्यूं चंदा चमकता है नभ में
वैसे चमको तुम यश गगन में
पर भर भी आता है माँ का मन
आत्मज तुम हो अंश आत्मन
जब जन्मे नहीं थे तुम
मुझसे था अस्तित्व तुम्हारा
आज बदल गए हैं प्रतिमान
तुमसे है अब अस्तित्व हमारा
जहाँ भी जाओगे तुम
हमें आसपास पाओगे तुम
हर दिन उगता सूरज ढलती रात
पाए हमें तुम्हारे साथ
दूरी नहीं होती मीलों की
दूरी तो होती है मन की
ये होगी मन की ई-मेल
जब चाहो कर लेना लॉग लाइन
इस टेलीफोन का कोई तार नहीं
पर पहुंचाता है संदेश पल में पार कहीं
आत्मज!
तुम आपा तुम विश्वास हो हमारे
तुमसे ही सपने साकार होंगे सारे
विदा की इस बेला में बहुत साकार
मन के सुंदर भाव देते हैं हम तुम्हें उपहार॥

तुम्हें मुबारक हो जीवन का आगामी वर्ष

तुम्हें मुबारक हो जीवन का आगामी वर्ष
भर दे तुम्हारे जीवन में बस हर्ष ही हर्ष
नए काम में लगता रहे सदा तुम्हारा मन
रहा करो तुम जीवन में सदा सर्वदा प्रसन्न
जो है सबसे प्रिय तुम्हारी वो अंजलि
रहे हमेशा निकट तुम्हारे और हो खिली-खिली
प्रॉक्टर में तुम रहो हमेशा विक्टर
पर गैम्बल कार्यालय में ही हो न कि घर पर
सार्थकता की तुम्हें सदा रही है तलाश
हमारी दुआ है उसे पाओ सदा आस-पास।
क्षितिज तक हो आत्मज तुम्हारी उड़ान
और छू लो तुम सफलता का आसमान
रोज टूटे रोज बने नए-नए कीर्तिमान
सदा बनी रहे तुम्हारे होठों पर मधुर मुस्कान।

सोनू के सिंगापुर जाने के उपलक्ष्य में

आत्मज तुम चले विदेश
छोड़कर अपना देश
सब परिजनों का साथ
अब हुई अतीत की बात
यही है जीवन की गति
होती है जिससे अनुरक्ति
फैलाते हैं जिसपर ममता का आंचल
वो उड़ जाता है एक दिन बनकर बादल
तुम करो खूब विकास
छू लो विशाल आकाश
पर भुलाना ना अपनी माटी की गंध
तुमको हमारी ममता की सौगंध
तुम जहाँ-जहाँ जाओगे
शुभाकांक्षा हमारी पाओगे
हमारा स्नेह, विश्वास और आशीष
सहलाएगा सदा तुम्हारा शीश
हमारा तन न हो भले ही पास
मन मंडराएगा सदा तुम्हारे आसपास
तुम जब-जब झांकोगे अन्तर में
हमारा प्रतिबिम्ब पाओगे अपने उर में
हम कर लेंगे मन से फिर मन की बात
हर पल, हर क्षण अन्तर में रहेगा अपना साथ॥

फिर से जलने को हैं दीप दीवाली के

फिर से जलने को हैं दीप दीवाली के
फिर मन में वो गुजरे पल महके
वो रौनक घर की वो उत्सव झिलमिल
हम जलाते थे छत पर दिये जब हिलमिल
घर था छोटा पर मन था बड़ा हमारा
तुम्हारे आने से आशियाना हो जाता था न्यारा
उस अलसुबह जब दूर से तुमको आते देखा
दीवाली का आलोक अपने मन में उतरते देखा
सारी मायूसी सारा एकाकीपन तब से गया दूर
तुम्हारी हँसी यू खनक उठी ज्यों बजते हैं नुपूर
पापा का गंभीर चेहरा भी झूम उठा खुशी से
शेफू भी उछल पड़ी कि अब मिलकर छोड़ेंगे पटाखे
मैलबा के मन में तो सदा से है तुम्हारा विशेष स्थान
चंद्रकांता के भी तुमसे पूरे होते हैं कई अरमान
ई मेल से क्या सचमुच होती है दूरी दूर
मुझे तो सात समंदर पार लगता है सिंगापुर
जैसा भी हो होता है अपना देश, अपना देश
तुम भी जानोगे जब तुम्हारी अगली पीढ़ी बसेगी विदेश
यूँ आज हो उठी है साकार वैश्विक ग्राम की परिकल्पना
पर बिन तुम्हारे बेरंग है रंगोली—अल्पना
मन में तुम सदा बसे हो यही है एक अटूट आस
हर दीपावली पर सदा बढ़ता रहे यह अमिट विश्वास
आलोकित हों अनगिन दीपक तुम्हारे जीवन के
तुम खिलो महको, हे सुरभित पुष्प हमारे आंगन के॥

<u>डाउन मैमोरी लेन–</u>

प्रिय सोनू को–उसके विवाह के अवसर पर–ईजा के उद्‌गार

आज हो रहा है शुरू अध्याय एक नया तुम्हारे जीवन का
पूरा हो रहा है अरमान भी मधुर हमारे मन का
तुम जन्में तो शुरू हुआ हमारे जीवन का नव इतिहास
तुम ज्यों ज्यों बढ़ते गये मिला हमें बहुत आनन्द और उल्लास
तुमने सार्थक किया हमारा माता-पिता होना
और महकाया हमारे घर-आंगन का कोना-कोना
नानाजी ने ही रखा था "अनुपम" तुम्हारा नाम
अम्पा-मम्मी ने दुलराया तुम्हें सुबह-शाम
बचपन से ही जीते तुमने ढेरों पुरस्कार
हर बार लगा हमें ही मिला एक और उपहार।
वो वार्षिकोत्सव में स्कूल तुम्हारे जाना
तालियों की गड़गड़ाहट से पुलकित हो जाना
वो गुलराज़ क्वाटर्स में अक्सर लाइट का जाना
और अपना अंत्याक्षरी में पुराने फिल्मी गाने गाना।
परांठों पर करते थे सर्वेश, अंकित और तुम अटैक
बातूनी चंद्रकान्ता भी कहाँ कर पाती थी चैक
ग्रीन हाउस के नन्हें कैप्टन का हरी चीज़ें बनाना
संयोग है आज अंजलि को हरे रंग का भाना।
लिट्टे वाली डिबेट के समय तो हो गयी थी छुट्टी
'अप्पू फैंसी ड्रेस' और 'ज़िंदगी एक सफर' के गाने की
वो यादें खट्टी मीठी
वो जे.एल.एस. और एस.एल.एस. के चर्चे तुम्हारे
ज्यों लौटते थे संग संग बचपन के पल भी हमारे
सुपर ब्रेन जब 1997 में कहलाए तुम
तुम्हारे ईजा-पापा होने पर इठलाए हम

सेन्ट स्टीवन्ज़ का था वो फंक्शन यादगार
जब संभावित ... ... की लगने लगी थी कतार
और आई.आई.एम. में जब मिला तुम्हें स्वर्ण-पदक
हमारी आंखें आई अतिशय प्रसन्नता से छलक-छलक
कहाँ उड़ गए बंबई की नौकरी के दिन
बहुत आनंद से भरे थे वो पलछिन।
अंजलि से तब हमारा भी बढ़ा परिचय और प्यार
तुम दोनों की जब अक्सर होती थी मीठी तकरार
दूर रहकर भी हर पल तुम पास ही थे हमारे
सदा रहे और रहोगे हमारी आंखों के तारे
जो पल्लवित होती रही तुमसे मित्रता
उसका तो आज कोई उपमान नहीं मिलता
अब आज जब पति बनने जा रहे हो तुम
जीवन में नए रंग भरने जा रहे हो तुम
सदा संतुलन को बनाए तुम रखना
हर संबंध की गरिमा बनाए तुम रखना
हम दोस्त थे, हैं और सर्वदा रहेंगे
जीवन के हर मोड़ पर साथ एक दूसरे का देंगे॥

प्रिय अनुपम और अंजलि को उनके शुभ-विवाह के अवसर पर

है आज मंगल परिणय की शुभ घड़ी आई
अनुपम और अंजलि को हम सबकी बधाई
पापा गिलरॉय के नूरेचश्म, ईजा दीपा की जिगर के टुकड़े
आज प्रिय सोनू राजा हमारे दूल्हा बनकर हैं खड़े
पापा अशोक जी मम्मी नीलम जी के लाड़ में पली
है सबकी दुलारी ये प्यारी व न्यारी दुल्हन अंजलि।
सजता है इधर अनुपम के माथे पर सेहरा
खिलता है उधर अंजलि का प्रफुल्लित चेहरा
दो परिवारों का सुखद मिलन हुआ है आज
सज गया है मानो शुभ संगम का साज
राघव को मिला है दोस्त सा बहनोई
शेफाली के अरमानों की प्यारी भाभी है आई।
हर्षित है अनुपम के परिजन—
मौसी, मौसा, बुआ, फूफा, मामा और मामी
पुलकित हैं चाई जी और कपूर परिवार का हर प्राणी।
अनुपम के मित्रों ने खूब रंग है जमाया
अंजलि की सहेलियों को भी आनंद है आया
अनुपम और अंजलि का अनुराग ज्यों मोती की लड़ी
हो ये मधुर बंधन अटूट और प्रगाढ़ हर पल की घड़ी।
जहाँ भी करें अनुपम और अंजलि निवास
उस घर में हो सुख शांति का स्थायी वास
छुएं विकास के ये शिखर बनाएं नित नए कीर्तिमान
रहे पारिवारिक जीवन में भी सबके प्रति स्नेह और सम्मान
मिले इस नवयुगल को हम सबका आशीष
यही है विनती आज हमारी हे प्रभु, हे ईश॥

सोनू की पच्चीसवीं वर्षगांठ पर

पूरी हो रही है तुम्हारे जीवन की चौथाई सदी
सफल होते रहो हर क्षेत्र में यूँ ही तुम सौ फीसदी
पच्चीस वर्षों के जीवन का ये सुहाना सफर
होते रहो क्षितिज की ओर सतत अग्रसर
अपने लक्ष्यों को भली भांति जान लो तुम
क्या करना है अब भविष्य में पहचान लो तुम
उसी ओर फिर बढ़ाओ आत्मज तुम चरण
तलाशों अपने भीतर उत्तर हर पल प्रति क्षण।
तुमने जन्म लेकर नई पदवी दी हमें
चले सतत तुम्हारी सफलता का कारवां बिना थमे
कई बार तुम्हारे सुकृत्यों ने आह्लादित किया हमें
अभिनव, अद्‌भुत गौरव से आह्लादित किया हमें
पर! भाग्य पर क्या किसी का सदा वश चलता है?
तुम्हारा देश से बाहर होना बहुत-बहुत खलता है
दूर रहकर भी बढ़कर रहे यूँ ही हमारा प्यार
यही है जन्मदिन पर तुम्हें हमारा उपहार॥

मेरे पास न विपुल धन है ... ...

मेरे पास न विपुल धन है
न अन्य भौतिक सुख-साधन है
है अगणित आशीषों की लड़ी
जिसकी चाहती हूँ बरसाना मैं झड़ी
तुम बचपन से ही आंखों के तारे थे
माँ की अमित आशाओं के सहारे थे
हम बड़े-बड़ों ने मिलकर लेकिन क्या किया
शायद तुमसे शीघ्र बचपना छीन लिया
प्यार के साथ सौंपी बहुत जिम्मेदारी
छुटपन से होने लगी हर समस्या में भागीदारी
हरदम चुनौतियों को बनाया ध्येय तुमने अपना
पूरा करते रहे अपना हर सपना
सब कुछ करते रहे तुम बहुत जल्दी जल्दी
उपलब्धियों ने तुम्हारी दिशा ही बदल दी
अब रुककर थोड़ा चिन्तन करो तुम
जीवन को मनचाहा आयाम दो तुम
आकाश पर रहे सदा दृष्टि तुम्हारी
आत्मज हर कामना हो पूरी तुम्हारी
अपूर्णता की जब होती है कसमसाहट
तभी आती है जीवन में सफलता की आहट
कभी न हावी हो तुम पर निराशा
हर दम सजे जीवन में नव-आशा
सबकी प्रेरणा का स्रोत बनो तुम
जीवन को सार्थकता से यूं ही जियो तुम
प्रभु को सदा-सर्वदा करते रहो नमन
आनन्द का पर्याय बन जाए तुम्हारा जीवन॥

दीपावली पर शेफू के लिए

फूलों से जब झरने लगा मादक पराग
जीवन में छाया हमारे असीमित अनुराग
संगीत के स्वरों ने जब छेड़ी मीठी धुन
हमारी बिटिया तब आई हमारे जीवन में तुम।
संजोया था जो मन ने सुहाना सपना
तुम्हारे आते ही साकार हुआ वो अपना
हिरणी की चंचलता, सरिता का प्रवाह
पक्षियों का कलरव, झरनों का बहाव
बदली की मस्ती देवदूतों की पवित्रता
धरती की सोंधी गंध, परियों की शुभ्रता।
निर्द्वन्द्व मन की ऊंची उड़ान, बनी तुम्हारे होठों की मुस्कान
उजली उजली ज्यों ही सवेरे की धूप
इन सबसे संवरा आत्मजा तुम्हारा रूप
लोगों के पास हैं भौतिक पदार्थ व धन
बिटिया तुम हो हमारा अनमोल रत्न
सरलता है तुम्हारे व्यक्तित्व का गहना
निश्छलता से जिसे तुम्हारी आत्मा ने पहना
नहीं लुभाते तुम्हें कृत्रिम वस्त्राभूषण
तुम स्वयं हो विधाता का अद्भुत आभूषण
भाते हैं तुम्हें लड़कों के खेल
दुनियादारी से होता नहीं तुम्हारा मेल
अपनी उपमा आप हो तुम
पुत्री अनंत स्नेह की माप हो तुम
बढ़े तुम्हारी मेधा—तुम्हारा वर्चस्व
मिले तुम्हें जीवन में सफलता—सर्वस्व
हरसिंगार के मनोहर फूलों की सुगंधि प्यारी शेफाली
हो शुभ तुम्हें यह और जीवन की हर दीवाली॥

प्रिय शेफू को उसके सत्रहवें जन्मदिन पर ... ...

हो रहे हैं जीवन के सत्रह वर्ष आज पूर्ण
पा लो तुम उल्लास के आयाम भी सम्पूर्ण
कर घोर परिश्रम तुम पाओ सबसे ऊँची शिक्षा
हो जाये पूरी जीवन की हर अभिलाषा, इच्छा
सादगी को ही बना लो आभूषण जीवन का
भर जाये कोना-कोना तुम्हारे मासूम मन का
फूल हो तुम हरसिंगार का हमारी प्यारी शेफाली
महक उठे तुम्हारे जीवन-तरू की हर डाली मतवाली
लघु होकर भी महकाना है उपवन को हरसिंगार
तुम कर दो सुरभित विश्व को बनके मृदुल बहार
तुमने हँसी से खनकाया हमारे नीड़ को
और सदा समझा है दुखियों की पीड़ को
यूँ ही तुम बिटिया हमारी प्यारी सी सदा बनी रहना
अपनी आकांक्षाओं को कर फलीभूत आकाश को छू लेना॥

शुभकामनाएँ

आर्चीज़ भी नहीं हॉलमार्क भी नहीं
मन की है बात जो मन ने कही
विदेशी कार्डों में कहां है वह भावना
जो होती है सच्चे मन की शुभकामना
आज है परीक्षा तुम्हारी
की है तुमने अच्छी तैयारी
खूब अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होओ तुम
जीवन की हर परीक्षा में सफल होओ तुम
फ्री होकर करना फिर खूब मौज और रैस्ट
पर आज का है संदेश 'ऑल द बैस्ट'॥

बेटी

बेटी है प्यार— बेटी है दुलार
बेटी है मान— बेटी है मनुहार
बेटी मीठी सरगम— बेटी दिल की धड़कन
हरदम करती गुनगुन— ज्यों नुपूर की रुनझुन
बेटी नदी की धार— भ्रमरी की गुंजार
शुभ्र मोतियों का हार— घर आंगन का शृंगार
बेटी मन की आस— और अटूट विश्वास
नियति का अवदान— ईश्वर का वरदान
बेटी सुनहरी भोर, और सपनीली शाम
बेटी खुला आकाश— बेटी तारिका ललाम
वो हँसती तो फूल हैं खिलते
वो रोती तो मोती हैं झरते
उसकी मृदुल पलकों में प्रतिपल
अनगिन भोले सपने हैं पलते
बेटी है हरियाली— महकते फूलों की डाली
सभी पुष्प हैं सुंदर यूँ तो
पर सबसे विशिष्ट शेफाली॥

शेफू के लिए

खिलखिलाती हुई आती है वो
गुनगुनाती हुई जाती है वो
चंचलता की है प्रतिमूर्ति
बातों की कभी न होती पूर्ति
कॉलेज में ही सदा रमी रहती है
सुबह से शाम वहीं बनी रहती है
घर आते ही शुरू हो जाते हैं फिर किस्से वहीं के
घंटो-घंटों तक छिड़े रहते हैं चर्चे वहीं के
तन-मन सभी बसते हैं कॉलेज में इसके
अंतहीन संख्या में हैं वहा मीत इसके
एन. एस. एस. हो या स्पैक्ट्रम सभी में इसे जाना
है कौनसा ऐसा फोरम जहां न रंग जमाना
पढ़ाई से फिलहाल है इसकी छुट्टी
फोन से खास है रिश्ता आपका
छूटता ही नहीं है उससे साथ जनाब का
अब चल रहे हैं कॉलेज में चर्चे इलेक्शन के
आश्वस्त हैं हम तो इनके हैडगर्ल के रूप में सलेक्शन के
जुनून न हो तो जीवन क्या जीवन
युवावस्था में तो होता ही मतवाला तन-मन
पर जब सब हो जाए जीवन में सैटल
तो छेड़ देना बिटिया कर्मक्षेत्र का बैटल
कभी चैन से बैठकर तुम सोना नहीं
समय बहुत अमूल्य है इसे खोना नहीं
साधना अपना लक्ष्य और करना सदैव उसी ओर गमन
भूलना न कभी प्रभु को, करते रहना सर्वदा नमन
तुम रहो सदैव हर्षित और बनो असली हीरा
है इस राखी पर भेंट तुम्हें प्रतीकात्मक ममता का हीरा॥

बिटिया

कुदरत ने जब अपनी सारी सुन्दरता और सुघड़ता समेटी
लिया उसने आकार, बन गई वो एक प्यारी बेटी
फूलों से ली कोमलता, ओस से नमी
भंवरों से ली चंचलता, सूरज से गर्मी
चंदा से शीतलता, तारों से प्रकाश
लहरों से नर्तन, कलियों से विकास
नित प्रतिपल नए अंदाज़ है दिखाती
घर में हो या बाहर, सभी को है भाती
अपने ही में मग्न सी इठलाती है वो
कभी दिखती है जाती हुई तो कभी लौट आती है वो
कभी गुनगुनाती मुस्कुराती कभी खिलखिलाती है वो
घर को सही अर्थ में घरौंदा बनाती है वो।
रहे वो यूँ ही सदा प्रसन्न, विनती है तुझसे ओ ईश
है हमारा अपनी बिटिया को आज यही शुभाशीष॥

गीता को मेरा काव्यमय अभिवादन

तुम्हें मुबारक हो जीवन का यह स्वर्ण जयन्ती वर्ष
लाया है हम सबके लिए यह नवपुलक नवहर्ष
तुम हो गीता-मनसा, वाचा, कर्मणा-उसी योगिराज कृष्ण की
जिसने थी मृतप्राय पाण्डवों में जीवन चेतना फूंकी
कर्म-अटूट, निश्छल कर्म सदा रहा प्रेरणा तुम्हारी
निष्ठुर काल ने यद्यपि ली अनेक बार परीक्षा तुम्हारी
सौन्दर्य-अप्रतिम वायवी सौन्दर्य की अधिष्ठात्री हो तुम
मरू-जीवन के मारक उष्ण दिवस के बाद की शीतल रात्रि हो तुम
तुम्हारी मोहक मुस्कान ने बनाया है न जाने कितनों को पुजारी
उन्हीं अकिंचनों में ही है गिनती भी हमारी
तुम्हारी सदाशयता और स्नेह का नहीं है पारावार
सारी सृष्टि ही मानो बन गई है तुम्हारा परिवार
कला की तुमने की है सतत साधना
संगीत बन गया है तुम्हारे जीवन की आराधना
वात्सल्य, स्नेह, ममता, प्रेम—हैं ये विविध नाम
इनका सम्मिलन ही है तुम्हारे व्यक्तित्व का आयाम
आज जब हो रहे हैं पूरे तुम्हारे जीवन के पांच दशक
है यही कामना तुम्हारा जीवन-उपवन उठे महक-महक
उल्लास, आनन्द, उपलब्धियों की निधियाँ हों झोली में तुम्हारी
मिले जीवन को और सार्थकता यही है कामना हमारी॥

नरूदा के लिए

तुमने बनाली है जगह तस्वीर के भीतर
हमने विवश हो चढ़ा दिए हैं श्रद्धा सुमन उसपर
किन्तु उस जाने ने तुम्हारे क्या ढाया है कहर
कि आज भी याद करके हम जाते हैं सिहर
हँसता मुस्कराता अस्तित्व कैसे हो जाता है विलीन
दशक बाद भी लक्ष्य हम नहीं पाते चीन्ह
एक और एक जो थे कभी ग्यारह सम
अधूरे हो गये, न रह पाये पूरे एक भी हम
दुनिया के रस्मोरिवाज निभाने पड़े फिर भी सारे
उत्तरदायित्व जमाने ने अनगिन थोप डाले सिर हमारे
अनन्त-यात्रा के राही होकर मुक्त हो गये प्रिय तुम
अकेलेपन की यातना को झेलते रह गए हम
सारी खुदाई के जुल्म हम हैं सहे जाते
और तुम तब भी हो तस्वीर में हरदम मुस्कराते॥

निम्मा की पचासवीं वर्षगांठ पर

तुम्हें मुबारक हो जीवन का स्वर्ण जयन्ती वर्ष
लाए तुम्हारे जीवन में नव उत्साह नवहर्ष
छाए तुम्हारे यश की हर ओर उजास
शुभ कार्यों से तुम्हारे फैले चहुँ ओर प्रकाश
मिले स्वास्थ्य—संपदा—प्रसन्नता की निधि
उमड़ता रहे सदा संतोष का जलधि
राजीव पुलकित हो सदा पा निर्मल वारि
हर्ष-अन्नू दो फूलों से महके तुम्हारी फुलवारी
अम्मा की सदा हो वरद छाया तुमपर
उल्लास का पर्याय बन जाए तुम्हारा घर
चिकित्सक का गुरु गंभीर दायित्व तुम्हारा
दे दे तुम्हारे व्यक्तित्व को और उजियारा
सार्थकता ही सदा जीवन-सुरभि तुम्हारी
यही है आज मनोकामना हमारी॥

प्रिय निम्मा और राजीव के लिए

हो गए हैं आज पूर्ण, विवाह के पच्चीस वर्ष
हो मुबारक प्रिय निम्मा और राजीव को रजत-जयन्ती वर्ष
यूँ लगता है जैसे हो कल की ही सी बात
जब हुआ था भिनाय में मांगलिक प्रणय का शुभ साथ
अन्नू ने दिया तुम्हारे जीवन को एक नया आयाम
हर्ष के आगमन से हुआ घर गुंजायमान
बंधती गयी स्नेह की डोर लड़ी प्रति लड़ी
बीतने लगी जीवन की गति घड़ी प्रति घड़ी
राजीव ने सर्जन बन चुना भारतीय रेलवे को
निम्मा ने किया गौरवान्वित स्त्री-चिकित्सा-जगत को
राजीव हैं सरलता और स्नेह की प्रतिमूर्ति
निम्मा की फैली है समाज में सुकीर्ति
अम्मा और पांडे परिवार का है वरदहस्त इन पर
पंत खानदान को भी है बहुत नाज़ इन पर
बढ़ता रहे यूं ही प्रेम, यश और मान
रहे सदा जीवन में मधुरता का कल-गान
'अनुग्रह' में सदा बसे शान्ति, सुमंगल और हर्ष
मनायें यूं ही हम सन् 2027 में स्वर्ण-जयन्ती वर्ष।

अन्नू की सगाई पर

आज है हमारी प्यारी अन्नू की सगाई
देखते-देखते होने को है हमारी बिटिया पराई
बचपन से अब तक—वो किस्से पे किस्सा
अन्नू थी हमारे जीवन का हिस्सा
वो रोना—वो हँसना—मचलना तुम्हारा
हरेक अदा पर पुलकित होना हमारा
आज अचानक बड़ी हो गई तुम
अपने पैरों पर खड़ी हो गई तुम
हम सभी से रहा है तुम्हें विशेष प्यार
पर शिव के आने से आई है जीवन में बहार
जीवन में होते हैं कई रिश्ते विशेष
पर शिव जैसा कौन है अनादि, अशेष?
जीवन में हरदम खुशी ही खुशी पाओ तुम
वर्षा की फुहार सी सब पर आनन्द बरसाओ तुम
हो तुम्हारी और शिव की जोड़ी अमर
आनन्द का पर्याय हो तुम दोनों का घर
अपनी कृपा का जल सदा बरसाना इन पर हे ईश
है हमारा अन्नू और शिव को शुभाशीष॥

उषा-अशोक के विवाह की वर्षगांठ पर

कल की सी लगती है बात
जब हुआ प्रणय-शुभ साथ
अशोक थे पाकर भोर के ललाते नभ की उषा को उमंगित
और उषा थीं शोक रहित जीवन साथी अशोक को पा उल्लसित
अमित ने दिया कालान्तर में नेह को नया आयाम
अपूर्वा ने महका दिया इनके आंगन को सुबह-शाम
मीत बढ़े—प्रीत बढ़ी बीतते गए वर्ष पर वर्ष
उमड़ता गया निरंतर, नव मोद-नव हर्ष
लो आज आ गया रजत-जयन्ती वर्ष
दांपत्य प्रेम, कर्त्तव्य, ममत्व का उत्कर्ष।
स्वजन, परिजन, स्नेहीजन देते हैं आनंद बधाई
कितनी सुंदर कितनी शुभ घड़ी आज है आई
करते हैं हम सभी यही कामना आज
जीवन में सदा सजें सुख के साज
जीवन का हर पल यूं ही सदा रहे अभिराम
सम्पूर्ण सार्थकता का मिले इन्हें वरदान
रजत-स्वर्ण, स्वर्ण-हीरक में हो परिणत
यह आज प्रभु से विनती है शत-शत॥

निर्मल को उसके जन्मदिन पर

ऐ दोस्त तुझे तेरा जन्मदिन मुबारक
हम दोनों को अपनी दोस्ती मुबारक
उम्र के इस पड़ाव पर भी भिगो देता है
जो मन के पोर-पोर को, वो अहसास मुबारक
सदा आबाद रहे आशियाना तेरा
तुझे तेरे घर की हर खुशी मुबारक
यूँ ही चलता रहे कारवाँ तेरी ज़िंदगी का
तुझे इस कारवाँ का हर खुशनुमा पड़ाव मुबारक॥

दिव्या की इक्कीसवीं वर्ष गांठ पर

इक्कीस वर्ष आज हुए हैं तुम्हारे जीवन के पूर्ण
इक्कीस पर व्यक्ति कहलाता है वयस्क और संपूर्ण
यह है समय कुछ ठोस निर्णय लेने का
शैशव और कैशोर्य को अलविदा कहने का।
इस वर्ष में अवश्य होगा कुछ नया काम
जीवन को मिलेंगे स्वनिर्भरता के और नये आयाम
निर्धारित होगी अब जीवन की तुम्हारी दिशा
जगेंगे नए संकल्प, पूरी होगी मन की आशा।
तुम छू सकती हो क्षितिज यदि ठान लो तुम
हमारा आशीष होगा साथ सदा यह जान लो तुम।
जहाँ-जहाँ पड़ेंगे तुम्हारे सजग चरण
करेंगे हमारे युगल नयन वहाँ-वहाँ अनुसरण
प्रिय दिव्या तुम्हारे जीवन में सदा रहे खुशहाली
हर पल छायी रहे जीवन-तरु में हरियाली॥

शुभाशीष

आया आज फिर है तुम्हारा जन्मदिन
करो प्रगति प्रिय दिव्या प्रति पल-दिन
पहुँचे जीवन अब किसी निर्णायक दौर में
यात्रा का हो पड़ाव किसी मधुर छोर में
अभिलाषाओं के निकलें इन्द्रधनुष रुपहले
पहुँचो गंतव्य तक तुम सबसे पहले
यूँ ही रहे परदुःखकातरता में रति
सार्थकता से भरी जीवन-डगर में हो सदा प्रगति
दूसरों के दर्द को तुम बना रही हो अपना
पूरा हो तुम्हारे जीवन का हर मधुर सपना।
आज मिली है फैलोशिप स्वदेश की तुम्हें
एक दिन मिले मानद उपाधि विदेश की तुम्हें
कभी न झुके तुम्हारा प्रशस्त, उन्नत शीश
तुमको हमारा अनन्त स्नेह और आशीष॥

दिव्या के जन्मदिन पर

फिर आई है चैत्र ऋतु लाई है बहार
प्रकृति ने बिखेरा है मौसम पर दुलार
हो मुबारक तुम्हें अपना यह जन्मदिन
हो खुशियों से भरा तुम्हारा यह जन्मदिन
चलती रहे सतत कुछ पाने की तलाश
जीवन-प्राची में हो सदा रंगों की उजास
बनते रहें नित्य नए लक्ष्य जीवन में
पाकर ही संतुष्टि न उपजे कभी मन में
और-और-और-और की हो सदा तलाश
कभी पूरी न हो उत्कंठाओं की प्यास
नित नए कीर्तिमान जीवन में बनाओ तुम
अब शीघ्र ही गृहस्थाश्रम में आ जाओ तुम।
हर ओर फैली रहे तुम्हारे शुभकर्मों की कीर्ति
यूँ ही रहे स्वभाव में मृदुलता, कर्मठता और प्रीति॥

नीलम जी के लिए

हो आपको अपना जन्मदिन मुबारक
हो परिवार को यह शुभ दिन मुबारक
हम आपके स्नेह के बंधन में बँधे जब
हम सभी को वो अनुपम लमहा मुबारक
दिया जिसने हमारी लाड़ली अंजलि को जनम
उस ममता की मूरत को अपना दिन मुबारक।
अशोक जी की जीवनसंगिनी राघव की जननी
चाईजी की दुलारी बहू को हर दिन मुबारक
महके आपका गुलशन खिलती रहे कलियाँ
हमारी समधन जी को एक आबाद चमन मुबारक
रूप और मेधा का अनूठा तालमेल हैं आप
व्यक्तित्व का हर महकता आयाम मुबारक॥

प्रिय रेणु के लिए

हर दम हँसती रहती है
आंखें चंचल हिरणी सी है
बोले तो बजती है वेणु
ये हैं हमारी प्यारी रेणु
जीवंतता से परिपूर्ण है
इनके बिना पुनश्चर्या अपूर्ण है
मोहती ये सबका मन है
रहती सदा मगन है।
सबसे मिलना इन्हें भाता है
घूमने-फिरने में आनन्द आता है
छोटे-बड़ों सबसे स्नेह का नाता है
अपने विषय की भी ज्ञाता है।
कल हम तो चले जायेंगे
मधुर स्मृतियाँ साथ ले जाएंगें
अतीत के स्मरण से स्नेहसिक्त हो जाएंगे
कभी रेणु को भुला न पाएंगे
कुछ ऐसी भायी है हमें आपकी अदा
याद रहेगी शिमला की सदा सर्वदा॥

सेंट स्टीवन्ज़ के विद्यार्थियों के लिए

बालदिवस के अवसर पर

सेंट स्टीवन्ज़ के प्यारे बच्चों
सारे जहाँ से न्यारे बच्चों

फिर से बाल-दिवस है आया
जिससे हमारा मन हर्षाया

दिनभर मौज करेंगे हम।
आज नहीं पढ़ेंगे हम

हर उत्सव पर हम रंग जमाते
आज किन्तु हम फूले न समाते

क्योंकि बात आज बदल गयी है
शिक्षकों की देखो शान नयी है

आज वो अभिनेता हैं हम दर्शक
उनका हर कार्यक्रम हमारा मार्गप्रदर्शक

वो कुछ गायेंगे— कुछ नाचेंगे
हम बार-बार तालियां बजाएंगे

किन्तु ये जो है बालदिवस
इतना ही नहीं कहता है बस

दिनभर तुम नाचो और गाओ
किन्तु नेहरू का संदेश न भुलाओ

देश को दिया यह नारा अभिराम
कहा सदा है आराम हराम

इसका भी अर्थ समझें हम
जीवन में गहरे उतरें हम

क्या देता हमें नेहरू का जीवन संदेश ?
हम देश से और हमसे है देश।

दिलवायी हमें स्वाधीनता कर सतत संघर्ष
मनायी हमने जिसकी स्वर्णजयन्ती गत वर्ष

हम ले जाएं देश को नए क्षितिजों की ओर
भारत की उपलब्धियों का हो हर ओर शोर

तभी छाएगी राष्ट्र में खुशहाली सरस
सार्थक होगा तभी मनाना बाल-दिवस॥